ब्रह्मचर्य

स्वस्थ व सुखमय साधना हेतु अत्यावश्यक



प्रकाशक

श्रीहित राधा केलि कुंज ट्रस्ट

।। श्री हितं वन्दे ।।
।। श्रीराधावल्लभो जयति ।।

ब्रह्मचर्य

स्वस्थ व सुखमय साधना हेतु
अत्यावश्यक

सम्पादक एवं संकलनकर्ता
श्रीहित कृपापात्र
प्रेमवल्लभा शरण

प्रकाशक
श्री हित राधा केलि कुञ्ज ट्रस्ट,
परिक्रमा मार्ग, वृन्दावन २८११२१
जिला - मथुरा (उत्तर प्रदेश)
Contact no. +919760622740, 9997184155
Web: vrindavanrasmahima.com
Email : radhakelikunj@gmail.com

---

25 दिसम्बर २०२४ **द्वितीय संस्करण - १००० प्रतियाँ**
सहयोग राशि - ८०

सम्पादकीय निवेदन

आज के दूषित वातावरण अर्थात् दूषित संग, आहार और भौतिकवादी सोच से युक्त शिक्षा प्रणाली के कारण 'बिन्दुपात अर्थात् वीर्यनाश करना' यह बालकों एवं युवाओं के मनोरंजन का एक अंग-सा बन गया है; जबकि जिसको वे मनोरंजन (मौज-मस्ती) का अंग समझ रहे हैं, यह सबसे बड़ा महामारी रोग है । यह रोग कैंसर और टीबी आदि से भी ज्यादा खतरनाक और प्राणघातक है क्योंकि उन रोगों की तो औषधि है किन्तु इसकी तो कोई औषधि भी नहीं है ।

इसलिए सावधान! इसको मौज-मस्ती या खिलवाड़ मत समझिये । जो लोग इस रोग से ग्रसित हैं, वे अपनी मृत्यु का स्वयं वरण कर रहे हैं क्योंकि वीर्य जीवनीशक्ति है और वीर्य का नाश ही जीवन का नाश (मृत्यु) है । भगवान् शंकर की अकाट्य उक्ति है –

मरणं बिन्दुपातेन जीवनं बिन्दुधारणात् ।
एवं संरक्षयेद् बिन्दुं मृत्युं जयति योगवित् ।।

'बिन्दु (वीर्य) का रक्षण (धारण) ही जीवन है और उसका क्षय (नाश) ही मृत्यु है । अतः वीर्य की (सर्वतोभावेन) रक्षा करनी चाहिए, उससे योगवेत्ता पुरुष मृत्यु को जीत लेता है ।'

जो वीर्य के साथ खिलवाड़ करते हैं निःसंदेह वे किसी योग्य नहीं रह जाते हैं अर्थात् सारहीन हो जाते हैं और जो वीर्य को धारण करते हैं, वे अमरत्व प्राप्त कर लेते हैं अर्थात् देवत्व को प्राप्त या भगवत्स्वरूप हो जाते हैं ।

अतः हमें यदि मृत्यु से अमरता की ओर जाना है **'मृत्योर्मा अमृतं गमय'** तो इसके लिए संयम परमावश्यक है ।

वीर्य का नाश करने वाले लोग भयानक रोगों से ग्रसित हो जाते है, उनका जीवन सुख-शान्ति से रहित अर्थात् दुःखमय हो जाता है, जवानी में ही बुढ़ापे के सारे लक्षण उनमें प्रकट हो जाते हैं और उनकी विचार-शक्ति भी इतनी दुर्बल हो जाती है कि वे घोर विषयों के गुलाम हो जाते हैं, परमार्थ-पथ पर भी चलने लायक नहीं रह जाते क्योंकि श्रुतियों में लिखा है –

'नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः' (मुण्डकोपनिषद्)

'जो बलहीन है, वह भगवत्प्राप्ति नहीं कर पाता है ।'

बलहीन होने से तात्पर्य न वे एकरस भजन कर पाते हैं और न उनमें काम-क्रोधादि वेगों को या प्रतिकूलता आदि को सहने की ही सामर्थ्य रह जाती है; क्योंकि 'वीर्य का ह्रास' हो जाने के कारण आत्मबल का उनमें अत्यन्ताभाव हो जाता है । 'आत्मबल' बिन्दु धारण करने से प्राप्त होता है । महर्षि पतञ्जलिजी ने योग-दर्शन में लिखा है – **'ब्रह्मचर्य प्रतिष्ठायां वीर्यलाभः'** (साधनपाद ३८)

'ब्रह्मचर्य की सम्यक् प्रतिष्ठा (दृढ़ स्थिति) हो जाने पर सामर्थ्य का लाभ होता है अर्थात् आत्मबल की प्राप्ति होती है ।'

जो ब्रह्मचर्य से रहित जन हैं उनका मन भजन के लिए निरुत्साहित होने लगता है । ऐसी स्थिति में अगर सत्संग प्राप्त न हो तो ऐसे लोग एक निकृष्ट भावना और नास्तिकता का शिकार होकर दुःख व अशान्ति के कारण आत्महत्या तक करने की सोच बैठते हैं ।

ऐसे अनेकानेक उदाहरण पूज्य सद्गुरुदेव **रसिक संत श्री हित प्रेमानंद गोविंद शरण जी महाराज** के समक्ष भी आये, अतः पूज्य महाराजश्री ने इस जटिल समस्या से मुक्ति पाने के लिए दैनिक सत्संग में धातुक्षय से होने वाली हानियाँ एवं ब्रह्मचर्य को साधने की जो युक्तियाँ साधकों को बताईं, उनको **'सर्वजन हिताय सर्वजन सुखाय'** अर्थात् **'सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः'** (सभी सुखी एवं रोगमुक्त हों) की भावना से यहाँ लिपिबद्ध किया गया है, जिसका प्रकाशन ऐसे उत्साहहीन रोगियों के लिए परमौषधी स्वरूप सिद्ध होगा क्योंकि इस रोग का जड़मूल से निवारण लौकिक औषधियों से नहीं अपितु अध्यात्मिक ज्ञान से ही सम्भव है ।

वृन्दावन
दिनाँक ०८.१२.२०१९

श्रीहित कृपापात्र
प्रेमवल्लभा शरण

विषय-सूची

मनुष्य देह की दुर्लभता

मनुष्य जीवन का चरम लक्ष्य है – भगवत्प्राप्ति अर्थात् महासुख में निमग्न होना । इसी प्रयोजन की सिद्धि के लिए प्रभु ने अहैतुकी कृपा-करुणा करके यह देवदुर्लभ अर्थात् **'भव अज कठिन मुनीजन दुर्लभ'** मानव देह हमें दिया है – **'कबहुँक करि करुना नर देही । देत ईस बिनु हेतु सनेही ॥'** ऐसा सभी शास्त्रों का कथन एवं समस्त संत-महापुरुषों का अनुभव रहा है । श्रीमद्भागवत में महाराज निमि (जनकजी) नवयोगेश्वरों के समक्ष कह रहे हैं –

दुर्लभो मानुषो देहो देहिनां क्षणभंगुरः । (११/२/२९)

'मनुष्य शरीर की प्राप्ति बड़ी दुर्लभ है, यदि प्राप्त भी हो जाए तो यह क्षणभंगुर है।' जगद्गुरु आद्यशंकराचार्य जी भी कहते हैं –

दुर्लभं त्रयमेवैतद् देवानुग्रहहेतुकम् ।
मनुष्यत्वं मुमुक्षत्वं महापुरुषसंश्रयः ॥ (विवेक चूड़ामणि)

'तीन चीजें बड़ी दुर्लभ हैं - मनुष्य जन्म, मुमुक्षता अर्थात् मुक्ति की इच्छा और महापुरूषों का संग; यह तीनों चीजें प्रभु की कृपा से ही प्राप्त होती हैं ।' श्रीसूरदास प्रभृति महापुरुष भी लिखते हैं –

हरि! तुम बहुत अनुग्रह कीन्हों ।
साधन-धाम बिबुध दुरलभ तनु, मोहि कृपा करि दीन्हों ॥

अतः बड़ी कठिनाई से प्राप्त होने के बाद भी ये नरदेह क्षणभंगुर है अर्थात् किसी को पता नहीं है, किस क्षण हमारे शरीर में कौन–सी भयानक घटना घटेगी और यह अमूल्य मनुष्य जीवन समाप्त हो जायेगा। इसीलिये श्रीप्रह्लाद जी महाराज ने असुर बालकों को शिक्षा देते हुए कहा है –

कौमार आचरेत्प्राज्ञो धर्मान् भागवतानिह ।
दुर्लभं मानुषं जन्म तदप्यध्रुवमर्थदम् ॥ (श्रीमद्भा० ७/६/१)

'इस लोक में बुद्धिमान पुरुष को चाहिए कि वह कुमारावस्था से ही भजन परायण हो जाये; क्योंकि सर्वविध पुरुषार्थों की प्राप्ति कराने वाला मनुष्य जन्म बड़ा दुर्लभ है, तथा प्राप्त होने पर भी क्षणभंगुर है यानी किस समय मृत्यु आ जाए किसी को पता नहीं ।'

इसीलिये अभी जो समय मिला है, इसी में हमें प्रतिक्षण सावधान होकर इस दुर्लभ शरीर से परमलाभ प्राप्त करने के लिये पूर्ण प्रयत्नशील रहना है और ऐसे मलिन कर्म नहीं करने हैं कि जिनसे कर्म-बंधन से युक्त होकर के नाना प्रकार की कुत्सित योनियों में भटककर नाना प्रकार के दुःख (कष्ट) भोगने पड़ें । भगवान् श्रीकृष्ण श्रीमद्भागवत के एकादश स्कंध में श्रीउद्धवजी से कह रहे हैं –

एषा बुद्धिमतां बुद्धिर्मनीषा च मनीषिणाम् ।
यत् सत्यमनृतेनेह मर्त्येनाप्नोति मामृतम् ॥ (११/२९/२२)

'हे उद्धव! विवेकियों का विवेक और चतुरों की चतुराई यही है कि वे इस विनाशी एवं असत्य शरीर के द्वारा मुझ अविनाशी एवं सत्यतत्त्व को प्राप्त कर लें ।'

यह मनुष्य जीवन विषयासक्ति से युक्त होकर बंधन में आने के लिए नहीं बल्कि बन्धन से मुक्त होने के लिये है ।

श्रुतियों में लिखा है कि असत् से सत् की ओर, अंधकार से प्रकाश की ओर और मृत्यु से अमरता की ओर चलने के लिए यह शरीर मिला है –

असतो मा सद्गमय, तमसो मा ज्योतिर्गमय,
मृत्योर्माऽमृतं गमय ॥ (बृहदारण्यकोपनिषद्)

विचार कीजिये, अगर हमने विवेक प्रधान मनुष्य योनि में आवागमन के चक्र से मुक्त होकर के प्रभु के चरणारविन्दों की प्राप्ति नहीं की तो फिर किस योनि में कर पायेंगे ।

इसलिए सावधान ! नाना प्रकार के भोगों का संग्रह करना और भोग भोगना, यह मनुष्य जीवन का लक्ष्य नहीं है ।

कूकर शूकर करत हैं विष विषया को भोग ।
तुलसी वृथा न खोइये, यह तन भजिबे जोग ॥

अरे ! आहार, निद्रा, भय और मैथुन - ये तो हर योनियों के जीवों को प्राप्त होते हैं, अगर मनुष्य योनि में भी हम इन्हीं विषयों के सेवन में अमूल्य जीवन को नष्ट कर रहे हैं तो यह बड़ी हानि का विषय है । महाप्रभु श्रीहरिवंश चन्द्रजू महाराज कहते हैं -

मानुष कौ तन पाय, भजौ ब्रजनाथ कौं ।
दर्वी लैं कैं मूढ़, जरावत हाथ कौं ॥ (स्फुटवाणी)

यह देह वासनाओं की पूर्ति के लिए नहीं बल्कि उपासना के लिये प्रभु द्वारा कृपा करके दिया गया है ।

सुनहु उमा ते लोग अभागी ।
हरि तजि होहिं बिषय अनुरागी ॥ (मानस. ३/३३)

अगर अभी हम सावधान नहीं हुए - शरीर, मन, वाणी को प्रभु की उपासना में नहीं लगाया तो जन्म-जन्मान्तर तक बहुत पछताना पड़ेगा – **मन पछितैहै अवसर बीते ।**
दुरलभ देह पाइ हरिपद भजु, करम बचन अरु ही ते ॥

ऐसा मत समझिये कि अगला जन्म हमको मनुष्य का ही मिलेगा और पुनः भजन करने का ऐसा अवसर प्राप्त होगा । अगला मनुष्य का जन्म उनको मिलता है जो सदा साधन परायण रहे हैं किन्तु किसी कारण से योगभ्रष्ट हो गए अर्थात् प्रभु से उनका योग नहीं हो

पाया तो प्रभु कृपा करके उन्हें पुनः अवसर दे देते हैं, पर जो इस अवसर को प्रमाद में, शास्त्र और सन्तों की आज्ञा का उल्लंघन करके, अमर्यादित चेष्टाओं के द्वारा नष्ट करता है तो उस पर प्रभु कुपित हो जाते हैं कि हमने करुणा करके इसे मनुष्य शरीर दिया और इसने प्रमादयुक्त होकर, शास्त्र विरुद्ध आचरण करके, उस अमूल्य जीवन को नष्ट किया; अतः फिर उसको प्रभु नारकीय योनियों में अर्थात् तिर्यक् योनियों में भेज देते हैं, जहाँ उसे नाना प्रकार के कष्ट सहने पड़ते हैं। गीताजी में प्रभु ने स्वयं कहा है –

प्रसक्ताः कामभोगेषु पतन्ति नरकेऽशुचौ ॥ (१६/१६)

'विषय-भोगों में अत्यन्त आसक्त लोग अपवित्र नरक में गिरते हैं।' काम, क्रोध, लोभ ये नरक के दरबाजे हैं –

त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः ।
कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत् ॥ (१६/२१)

इसी मनुष्य योनि में ही हम अपना हित कर सकते हैं। अन्य योनियाँ तो भोगयोनि हैं, उनमें यह स्वतंत्रता नहीं है कि हम नवीन कर्म करके प्रभु की प्राप्ति कर सकें। उनके प्रारब्धानुसार शुभकर्म बन जायें तो बन जायें अन्यथा विवेक के द्वारा वे नवीन कर्म करने की योग्यता नहीं रखते हैं।

अन्य जो भी योनियाँ हैं, चाहे वे देवयोनि ही क्यों न हों, वे सब भोगयोनि के अन्तर्गत ही आते हैं क्योंकि वे भी स्वर्ग में अपने शुभकर्मों का भोग कर रहे हैं। जैसे नरक में अशुभ कर्म का भोग है, वैसे ही स्वर्ग में शुभकर्मों का भोग है। एक मृत्युलोक में ही और उसमें भी यह मनुष्य शरीर ही ऐसा है जिसमें प्रारब्धानुसार प्राप्त शुभ और अशुभ कर्मों को भोगते हुए नवीन कर्म करके अर्थात् भगवद् उपासना करके शुभ–अशुभ दोनों कर्मों से ऊपर उठा जा सकता है।

श्रीहिताचार्यचरण स्फुटवाणी में कहते हैं –

तैं भाजन कृत जटित विमल चंदन कृत इन्धन ।
अमृत पूरि तिहि मध्य करत सरषप खल रिंधन ॥

जैसे कोई विविध रत्नों से जटित स्वर्णपात्र में अमृत भरकर उसे चूल्हे पर चढ़ाकर चन्दन की लकड़ी से अग्नि प्रज्वलित करके उसमें सरसों की खली को राँधे तो वह पुरुष मन्दमति नहीं तो क्या कहा जाएगा ? ऐसे ही यह मनुष्य शरीर स्वर्णपात्र की भाँति दुर्लभ है और यह रत्नजटित अर्थात् समस्त दैवीय सम्पदा (सद्गुणों) से संपन्न है तथा इसमें ज्ञान-विज्ञान रूपी अमृत भरा हुआ है, जो अभागी मनुष्य श्वाँसों को खर्चा करके अर्थात् जलाकर इसमें विषय-भोग रूपी खली को राँधता है तो वह महामूर्ख नहीं तो क्या है ? फिर दूसरे रूपक में श्रीहरिवंशचन्द्र जू कहते हैं –

अद्भुत धर पर करत कष्ट कंचन हल वाहत ।
बार करत पाँवार मंद बोवन विष चाहत ॥

अद्भुत भूमि में कष्ट करके कंचन के हल से उसे जोतकर उसमें मूँगे की बाड़ लगाकर, उसमें तुम विष बोना चाहते हो। इसीलिये सावधान! यह मनुष्य शरीर बड़ा दुर्लभ है और यह नरदेह ही ऐसी भूमि है जिसमें हम शुभ-अशुभ कर्म रूपी धान्य बोकर स्वर्ग-नरक कुछ भी प्राप्त कर सकते हैं अथवा प्रभु की आराधना करके मोक्षपद या भगवत्प्रेम प्राप्त कर सकते हैं, समस्त पुरुषार्थों को देने वाला यह मनुष्य देह है ।

जैश्री हित हरिवंश विचारि कै मनुज देह गुरु-चरन गहि ।
सकहि तौ सब परपंच तजि कृष्ण-कृष्ण गोविन्द कहि ॥

अतः इस शरीर का दुरुपयोग मत करो, गुरु-चरणों का आश्रय ग्रहण कर और यदि संभव हो तो सकल प्रपंच का त्याग करके प्रभु की उपासना में इस शरीर को लगाओ ।

जो हम दुर्लभ मनुष्य शरीर को विषय-भोगों में नष्ट कर रहे हैं, यह बहुत हानि की बात है ।

'हीरा जनम अमोल है कौड़ी बदले जाय।'

यद्यपि प्रमाद और अविद्या के कारण यह बात हमारे समझ में नहीं आ रही है; जबकि हमारी इस दशा को देखकर पशु भी हँसते हैं कि 'देखो, यह कितना मूढ़ है ! इसे मनुष्य शरीर मिला है । यह भजन करके प्रभु को प्राप्त कर सकता है, पर हम जैसे पशुओं की भाँति यह भोगों को ही जीवन का सार समझ रहा है ।' ऐसे कहकर पशु हम मनुष्यों पर हँसते हैं । श्रीमद्भागवत में ग्यारहवें स्कंध में लिखा है –

त्वङ्मांसरुधिरस्नायुमेदोमज्जास्थिसंहतौ ।
विण्मूत्रपूये रमतां कृमीणां कियदन्तरम् ॥ (११/२६/२१)

'यह शरीर त्वचा, माँस, रक्त, स्नायु, मेद, मज्जा और अस्थि आदि से निर्मित है और इसमें मल-मूत्र, पीव आदि भरे हुए हैं, अतः ऐसे घृणित शरीर में जो रमण करता है, उसमें और मल-मूत्र के कीड़ों में क्या अन्तर रहा?'

प्रभु ने बहुत करुणा करके हमें मनुष्य शरीर दिया है, इसलिये हमें सतत् भजन परायण रहना है और विषय-सुख के लिए अपने अमूल्य जीवन को नष्ट नहीं करना है ।

श्रीरामचरितमानस में भगवान् राम ने प्रजाजनों को यही उपदेश दिया है –

बड़ें भाग मानुष तनु पावा । सुर दुर्लभ सब ग्रंथन्हि गावा ॥
साधन धाम मोच्छ कर द्वारा । पाइ न जेहिं परलोक सँवारा ॥

सो परत्र दुख पावइ सिर धुनि धुनि पछिताइ ।
कालहि कर्महि ईस्वरहि मिथ्या दोष लगाइ ॥
एहि तन कर फल बिषय न भाई । स्वर्गउ स्वल्प अंत दुखदाई ॥
नर तनु पाइ बिषयँ मन देहीं । पलटि सुधा ते सठ बिष लेहीं ॥
नर तनु भव बारिधि कहुँ बेरो । सन्मुख मरुत अनुग्रह मेरो ॥
करनधार सदगुर दृढ़ नावा । दुर्लभ साज सुलभ करि पावा ॥
जो न तरै भव सागर नर समाज अस पाइ ।
सो कृत निंदक मंदमति आत्माहन गति जाइ ॥ (७/४३,४४)

श्रीमद्भागवत में भी यही बात लिखी है -

लब्ध्वा सुदुर्लभमिदं बहुसम्भवान्ते मानुष्यमर्थदमनित्यमपीह धीरः ।
तूर्णं यतेत न पतेदनुमृत्यु यावन्निःश्रेयसाय विषयः खलु सर्वतः स्यात् ॥

'इस संसार में अनित्य होने पर भी अनेक जन्मों के बाद पुरुषार्थ को देने वाले इस दुर्लभ मनुष्य शरीर को पाकर जबतक मृत्यु नहीं आती है, धीर पुरुषों को चाहिए कि वे तबतक मोक्ष प्राप्ति के लिए शीघ्र ही प्रयत्न कर लें; विषय-भोगों में इस जीवन को नष्ट न करें क्योंकि विषय-भोग तो अन्य योनियों में भी प्राप्त हो सकते हैं ।'

तस्यैव हेतोः प्रयतेत कोविदो न लभ्यते यद्भ्रमतामुपर्यधः ।
तल्लभ्यते दुःखवदन्यतः सुखं कालेन सर्वत्र गभीररंहसा ॥

(१/५/१८)

'ऊँची-नीची नाना योनियों में भ्रमण करने पर भी भाग्यवश जिस वस्तु (प्रभु की) प्राप्ति नहीं होती है, विवेकीजनों को उसी वस्तु की प्राप्ति अर्थात् प्रभु की प्राप्ति के लिए ही प्रयत्न करना चाहिए, विषयों की प्राप्ति के लिए नहीं; क्योंकि विषय सुख तो कालक्रम से दुखवत् (जैसे दुःख प्राप्ति के लिए कोई प्रयास नहीं करता) बिना प्रयास के सब योनियों में प्राप्त हो जाता है ।'

स वञ्चितो बतात्मध्रुक् कृच्छ्रेण महता भुवि ।
लब्ध्वापवर्ग्यं मानुष्यं विषयेषु विषज्जते ॥ (श्रीमद्भा० ४/२३/२८)

'इस भूलोक (कर्मभूमि) में बड़ी कठिनाई से प्राप्त मोक्षप्रद मनुष्य शरीर को पाकर के भी विषयों में जो आसक्त हो जाता है, वह आत्महत्यारा है और माया के द्वारा ठगा गया है ।'

अतः कुछ समय के लिए हमको ये मनुष्य जीवन दिया गया है, इसमें चाहे हम दुराचार करके नारकीय यातनाओं को भोगने की तैयारी कर लें या संयम-सदाचार पूर्वक चलकर प्रभु की उपासना करके, संसृति से हमेशा के लिए मुक्ति प्राप्त कर लें ।

ब्रह्मचर्य (बिन्दु-संरक्षण)

'ब्रह्मचर्य' का अभिप्राय वीर्य-रक्षा से है । वीर्य सम्पूर्ण शरीर का सार है । प्रभु के द्वारा प्रदान की गयी जीवनी-शक्ति (वीर्य) यह प्रभु की अद्भुत कृपा है । मनुष्य जिस मार्ग में भी चलना चाहे, ब्रह्मचर्य (बिन्दु-संरक्षण) से उसको बहुत बड़ा बल यानी बहुत बड़ी सामर्थ्य मिलती है क्योंकि ब्रह्मचर्य सम्पूर्ण शक्तियों का खजाना है –

'वीर्यमेव बलम्, बलमेव वीर्यम् ।'

वीर्य ही बल है और बल का नाम ही वीर्य है । आज तक संसार में जितने भी बड़े-बड़े बलवान योद्धा या प्रतिभावान् पुरुष हुए, सबको ब्रह्मचर्य का आश्रय लेना पड़ा क्योंकि बिना वीर्यरक्षा के शारीरिक बल तथा मनोबल किसी को प्राप्त हो ही नहीं सकता है ।

दीर्घ-जीवन, उत्तम-स्वास्थ्य, दिव्य-ज्ञान तथा अखण्ड-स्मृति आदि की प्राप्ति के लिए ब्रह्मचर्य ही परम साधन है । यहाँ तक कि -

'ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत ।'

ब्रह्मचर्य रूपी तप से देवताओं ने मृत्यु तक को जीत लिया अर्थात् अमरत्व की प्राप्ति की । ऐसी सामर्थ्य ब्रह्मचर्य में है । लेकिन आज का दूषित वातावरण अमरत्व या देवत्व प्रदायक ब्रह्मचर्य को धूलि-धूसरित कर रहा है । जिसको आज के लोग मनोरंजन (मौज-मस्ती) समझ रहे हैं वह सर्वनाश का रास्ता है –

'आयुर्वीर्यं यशश्चैव हन्यतेऽब्रह्मचर्यया ।'

अर्थात् ब्रह्मचर्य के ह्रास से आयु, वीर्य, यश, सुख, आरोग्य, तेज, बल (सामर्थ्य), विद्या, धर्म और भजन आदि सबका नाश हो जाता है ।

जो धर्म-मर्यादा, शास्त्र-मर्यादा का उल्लंघन करके ब्रह्मचर्य को नष्ट कर रहे हैं, क्या वे कभी स्वप्न में भी सुख या शान्ति प्राप्त कर सकते हैं ? भगवान् श्रीकृष्ण के वचन हैं -

यः शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्तते कामकारतः ।
न स सिद्धिमवाप्नोति न सुखं न परां गतिम् ॥ (गी. १६/२३)

'जो पुरुष शास्त्र विधि की अवहेलना करके, मनमाना आचरण करता है, उसे न सिद्धि प्राप्त होती है, न परमगति और न ही सुख-शान्ति ।'

इसलिए सदैव शास्त्र और संतों की बनायी हुई मर्यादा के अनुसार ही सबको चलना चाहिए, तभी लोक और परलोक दोनों में सुख और शान्ति प्राप्त हो सकती है अन्यथा असंभव है ।

ये जो आजकल चल रहा है यानी वीर्य का मनोरंजन में नाश किया जा रहा है, ये बहुत ही हानिकारक है । जिसके जीवन में है, वह तुरंत छोड़ दे । जिस वीर्य-शक्ति से सुन्दर संतान की उत्पत्ति होती है, उसी वीर्य शक्ति को जो मनोरंजन में नष्ट कर रहे हैं, वे हत्यारे हैं। गोरखनाथ जी ने लिखा है -

वीर्य की एक बूँद में जीव बसें नौ लाख ।
मन मरोर नारी तजी यह गोरख की साख ॥

वीर्य की एक बूँद में नौ लाख जीव होते हैं, एक बूँद वीर्य-नाश से असंख्य जीवों की हत्या होती है । योग-दर्शन के भाष्य में भाष्यकार श्रीवेदव्यास जी ने भी लिखा है – **'नानुपहत्य भूतानि विषयोप-भोगः सम्भवति ।'** बिना हिंसा के भोग नहीं होता है । इसलिए ब्रह्मचर्य नष्ट करने वाला हिंसक होता है; इसका दण्ड उसे जरूर भोगना पड़ेगा । यद्यपि संतानोत्पत्ति की इच्छा से यदि ब्रह्मचर्य खण्डित किया गया है

तो वह शास्त्राज्ञा के अन्तर्गत माना जाएगा लेकिन वासना से प्रेरित होकर के ब्रह्मचर्य नष्ट करना, वो हिंसा है । शास्त्रों में लिखा है –

'व्यर्थीकारेण शुक्रस्य ब्रह्महत्यामवाप्नुयात् ।'

वृथा वीर्य का नाश करने से ब्रह्म-हत्या का पाप लगता है ।

जो पूर्ण ब्रह्मचारी है, उसको विशेष साधना नहीं करनी पड़ती है; उसे स्वतः अखण्ड भगवत्स्मृति होने लगती है ।

श्रीशंकराचार्य जी ने लिखा है – 'ब्रह्मचर्य की अखण्डता से सहज ही परमात्मदर्शन होता है।'

कोई सोच भी नहीं सकता है कि ब्रह्मचारी को कितना आनंद प्राप्त होता है **'ब्रह्मचारी न काञ्चन आर्तिमार्च्छति ।'** ब्रह्मचारी को कभी किसी प्रकार का कष्ट नहीं होता किन्तु जो मृगतृष्णातुल्य काम-सुख के चक्कर में ब्रह्मचर्य क्षीण करते हैं वे घोर पतन, घोर अशांति की ओर जाते हैं । श्रीभर्तृहरि जी ने वैराग्यशतक में लिखा है कि **'भोगा न भुक्ता वयमेव भुक्ताः'** हम भोगों को नहीं भोग पाये, प्रत्युत भोगों ने हमको ही भोग लिया अर्थात् नष्ट कर डाला ।

संसार में प्रत्येक व्यक्ति आरोग्य और दीर्घ जीवन की इच्छा रखता है । उत्तम स्वास्थ्य व दीर्घजीवी बनने के लिए आयुर्वेद में शरीर रूपी भवन के तीन उपस्तम्भ बताए गए हैं – आहार, निद्रा, और ब्रह्मचर्य ।

'त्रय उपस्तम्भाः आहारः स्वप्नो ब्रह्मचर्यमिति'

यदि इनमें से एक भी ठीक नहीं होता है तो शरीर रूपी मकान जर्जर होकर गिर जाता है।

इसलिए वीर्य के संरक्षण से ही मनुष्य स्वस्थ और सुखी रह सकता है । व्यभिचारी पुरुष प्रायः अस्वस्थ और दुखी देखे जाते हैं क्योंकि वे अपने वीर्य का नाश कर इस अवस्था को पहुँचते हैं, **'वीर्यं**

रक्षति रक्षितम्' जो अपने वीर्य की रक्षा करता है, वह (वीर्य) भी उसका संरक्षण करता है । दीर्घजीवन और उत्तम स्वास्थ्य के लिए ब्रह्मचर्य साधना बहुत आवश्यक है । **'नष्टे शुक्रे सर्व रोगा भवन्ति ।'** वीर्य के अभाव में ही अनेक रोग उत्पन्न होते हैं ।

अतः जो अपने स्वास्थ्य और आरोग्य को स्थिर रखते हुए सुखी जीवन को व्यतीत करने के इच्छुक हैं, उन्हें प्रयत्नपूर्वक वीर्यरक्षा करनी चहिये ।

ब्रह्मचर्य-प्रतिष्ठायां वीर्य-लाभो भवत्यपि ।
सुरत्वं मानवो याति चान्तेयाति परांगतिम् ॥

'ब्रह्मचर्य का पालन करने से वीर्य का लाभ होता है । ब्रह्मचर्य की रक्षा करने वाले मनुष्य को सुरत्व की प्राप्ति होती है, और अन्त में परम गति भी उसे मिलती है ।

मृत्युव्याधिजरानाशी पीयूषं परमौषधम् ।
ब्रह्मचर्यं महद्यत्नं सत्यमेव वदाम्यहम् ॥
शान्ति कान्ति स्मृति ज्ञानमारोग्यञ्चापि सन्ततिम् ।
यद्दच्छति महद्धर्मं ब्रह्मचर्यं चरेदिह ।

'मृत्यु, व्याधि और जरा को नाश करने वाला, अमृत के समान महौषध ब्रह्मचर्य है। इसलिए शान्ति, कान्ति, स्मृति, ज्ञान और आरोग्य तथा संतान, इनकी जो पुरुष इच्छा करता है, वह ब्रह्मचर्य का पालन करे ।'

अखण्ड नैष्ठिक ब्रह्मचारी श्रीभीष्म पितामह धर्मराज युधिष्ठिर को ब्रह्मचर्य का उपदेश देते हुए कहते हैं कि –

आजन्म भरगाद्यस्तु ब्रह्मचारी भवेदिह ।
न तस्य किंचिदप्राप्यमिति विद्धि नराधिप ।
बहु-कोटि ऋषीणाञ्च ब्रह्मलोके वसन्त्युत ॥

'जो आजन्म ब्रह्मचारी रहता है उसे संसार में कुछ भी दुःख नहीं होता है और उस पुरुष को कोई वस्तु दुर्लभ नहीं । ब्रह्मचर्य के प्रभाव से करोड़ों ऋषि ब्रह्मलोक में वास कर रहे हैं ।'

उपनिषदों में भी यही बात लिखी है –

तद्य एवैतं ब्रह्मलोकं ब्रह्मचर्येणानुविन्दन्ति,
तेषामेवैष ब्रह्मलोकः, तेषाँ सर्वेषु लोकेषु कामचारो भवति ॥

(छान्दोग्योपनिषद्)

'जो इस ब्रह्मलोक को ब्रह्मचर्य के द्वारा जानते हैं, उन्हीं को यह ब्रह्मलोक प्राप्त होता है तथा जो ब्रह्मचर्य से युक्त पुरुष हैं, वे सभी लोकों में विचरण कर सकते हैं ।'

वीर्य-संरक्षण से होने वाले लाभ

शुक्रं सौम्यं सितं स्निग्धं बल पुष्टिकरं स्मृतम् ।
गर्भबीजं वपुः सारो जीवस्याश्रयमुत्तमम् ॥

'शुक्र (वीर्य) जीवनी शक्ति का बढ़ाने वाला, श्वेत-वर्ण, चिकना, बल तथा पुष्टिकारक होता है । यह गर्भ का बीज, शरीर का सार रूप तथा जीव का प्रधान आश्रय है ।'

१. वीर्य ही हृदय को पुष्ट बनाता है ।

२. वीर्य से ही सभी अंगों में जीवनी-शक्ति संचालित होती रहती है ।

३. वीर्य से ही मस्तिष्क शान्त और विचार-शक्ति से संपन्न रहता है ।

४. वीर्य से ही निर्भयता, पराक्रम, साहस, उत्साह आदि दिव्य गुणों की वृद्धि होती है ।

५. 'ब्रह्मचर्य' जीवन के भव्य भवन निर्माण की आधारशिला है ।

६. वीर्य ही सन्तानोत्पत्ति का मूल है ।

७. ब्रह्मचर्य ही अन्तःकरण की पवित्रता एवं शान्ति बनाए रखने में प्रधान कारण है।

८.ब्रह्मचर्य ही सदैव स्वस्थ, प्रसन्न व सुखी रहने का अक्षुण्ण उपाय है।

९. जीवन की सफलता, सुन्दर स्वास्थ्य, हृष्ट-पुष्टता के लिए ब्रह्मचर्य अमृत रूप है ।

१०. दीर्घजीवन का मूल कारण वीर्य-रक्षण ही है । मनुष्य बिना ब्रह्मचर्य धारण किये हुये, कदापि पूर्णायु नहीं हो सकता है ।

११. ब्रह्मचर्य ही सब प्रकार की उन्नति का प्रधान साधन है ।

१२. जो पूर्ण ब्रह्मचारी है, वह मनुष्य नहीं देवता है ।

१३. वीर्य से ही शारीरिक-परिश्रम करने की शक्ति प्राप्त होती है ।

१४. वीर्यवान पुरुष पुरुषार्थी होता है, उसमें दैवीय गुण स्वतः प्रकट हो जाते हैं, उसकी बुद्धि बहुत प्रखर हो जाती है, उसके चित्त में एकाग्रता आ जाती है, वह शक्तिशाली, दृढ़निश्चयी तथा निरोगी होता है ।

१५. वीर्यशक्ति से ही द्वन्द्वों (सुख-दुःख, शीत-उष्ण आदि) को सहने की सामर्थ्य मिलती है ।

१६. ब्रह्मचर्य से बुद्धि कुशाग्र और स्मरण शक्ति तीव्र होती है ।

१७. संसार के समस्त सुख आयु के आधीन हैं और आयु ब्रह्मचर्य के अधीन है ।

१८. शरीर में वीर्य संरक्षित होने पर आँखों में तेज, वाणी में प्रभाव, कार्य में उत्साह एवं प्राण ऊर्जा में अभिवृद्धि होती है।

१९. वीर्य-रक्षा से शरीर में फुर्ती व चैतन्यता रहती है, आलस्य तथा तन्द्रा नहीं आती है, बीमारियों के आक्रमण को रोकने की शक्ति आती है ।

२०. ब्रह्मचर्य के प्रभाव से बड़ी-से-बड़ी विपत्ति आने पर भी धैर्य नहीं छूटता, कठिनाइयों एवं विघ्न-बाधाओं का वीरता पूर्वक सामना करने की शक्ति मिलती है ।

२१. ब्रह्मचर्य से इन्द्रियाँ सबल रहती हैं, शरीर के अंग-प्रत्यंग सुदृढ़ रहते हैं, आयु बढती है तथा वृद्धावस्था जल्दी नहीं आती है ।

२२. ब्रह्मचर्य ही तप, व्रत, नियम-संयम, योग-ज्ञान, चरित्र और विनय की जड़ है।

इसीलिए भीष्म पितामह ने कहा है कि तीनों लोकों के साम्राज्य का भले ही त्याग कर देना अथवा इससे भी कोई उत्तम वस्तु हो, उसको भी छोड़ देना किन्तु ब्रह्मचर्य को भंग नहीं करना।

'हस्त-मैथुन' एक प्राणघातक रोग

यह एक महाविनाशकारी प्राणघातक रोग है और इस रोग से करीब ९९ प्रतिशत लोग ग्रसित हैं । कुशिक्षा और कुसंग के कारण अज्ञानतावश आज केवल मनोरंजन के लिए बालक एवं नवयुवक हस्त-क्रिया के द्वारा अपने ब्रह्मचर्य का नाश करके, बाल्यावस्था से ही नष्ट हो रहे हैं । अब न वे गृहस्थ-जीवन के लायक रह पा रहे हैं और न ही विरक्ति लायक; क्योंकि वीर्य ही इस शरीर का राजा है और इसके क्षीण होने से शरीर दुर्बल और निस्तेज हो जाता है । वीर्य की एक भी बूँद निकालने का मतलब है शरीर को निचोड़कर रस निकालना । अतः 'बिन्दु-पात' सब प्रकार की अवनति का मूल है ।

इसीलिये हस्तमैथुन के द्वारा या और भी किसी माध्यम से जो लोग वीर्यपात करते हैं, वे सावधान हो जाएँ क्योंकि वे बिल्कुल अपनी मृत्यु का वरण कर रहे हैं और ये अनिष्टकारी चेष्टा उन्हें पुनः मनुष्य शरीर प्राप्त नहीं होने देगी ।

अतः अभी भी मौका है सँभलने का । बिन्दु-नाश करना बिल्कुल बंद कर दो अन्यथा यह कुकृत्य तुम्हें जर्जर कर देगा, निकृष्टभावना से युक्त कर देगा, उत्साहहीन और खोखला कर देगा । तुम्हारी पारमार्थिक या व्यवहारिक अवनति का प्रधान कारण भी यही हस्त-मैथुन क्रिया है । गृहस्थ में तो जब पति-पत्नी का संयोग होता है, तब वीर्यपात होता है किन्तु इस हस्त-क्रिया के द्वारा लोग इसमें प्रतिपल जल रहे हैं, मर रहे हैं । ये क्रिया इतना कमजोर और परास्त कर देगी कि आप भगवन्मार्ग पर भी नहीं चल सकते हो क्योंकि **'आरोग्यमूलं खलु धर्मसाधनम्'** नीरोग व्यक्ति ही भजन-साधन कर पाता है ।'

आरोग्यता ही मनुष्य की सबसे बड़ी सम्पत्ति है । यही चारों पुरुषार्थों की जड़ है –

'धर्मार्थ काम मोक्षाणामारोग्य मूल मुत्तमम् ।'

धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का उत्तम साधन आरोग्य ही है और आरोग्यता का सर्वोत्तम साधन है ब्रह्मचर्य। रोगी वही होता है जो भोगी होता है । ज्यों-ज्यों वीर्यशक्ति क्षीण होती है त्यों-त्यों ही मनुष्य दुर्बल व रोगी होता चला जाता है । ब्रह्मचारी पुरुष ही आरोग्य हो सकता है । वैद्यों का कहना है कि १ वर्ष तक यदि कोई ब्रह्मचर्य का पालन करे तो उसके बड़े भयंकर रोग भी जड़मूल से नष्ट हो जाते हैं । व्यभिचारी पुरुष को कदापि आरोग्यता प्राप्त नहीं हो सकती है । अच्छे आहार और औषधियों से आरोग्यता प्राप्त नहीं होती, प्रत्युत वीर्य-रक्षा करने से प्राप्त होती है । वीर्यवान पुरुष ही आरोग्यवान होता है । चरकसंहिता में लिखा है –

आहारस्य परं धाम, शुक्रं तद्-रक्ष्यमात्मनः ।
क्षये यस्य बहून् रोगान्मरणं वा नियच्छति ॥

'मनुष्य के भोजन का सबसे उत्कृष्ट अंश वीर्य है । अतएव यत्न सहित उसकी रक्षा करनी चाहिये; क्योंकि वीर्य के क्षय होने से अनेक प्रकार के रोग उत्पन्न होते हैं और इसका अन्तिम परिणाम मृत्यु है ।'

इसलिए आज से, इसी समय से यह दृढ़ संकल्प करो कि हम किसी भी प्रक्रिया के माध्यम से वीर्यपात नहीं करेंगे ।

'अब लौं नसानी अब न नसैहौं ।'

यद्यपि दीर्घकाल से धातुक्षय होने से अतिशय चंचल एवं दुर्बल चित्त हो जाने के कारण लोग प्रतिज्ञा करके भी संयम नहीं कर पाते हैं। हजारों बार प्रतिज्ञायें करने पर भी एक भी प्रतिज्ञा पूरी नहीं हो

पाती क्योंकि जैसे ही विषय सामने आते हैं तो उनके सामने आते ही सभी प्रतिज्ञायें ताक पर धरी रह जाती हैं । लेकिन फिर भी हिम्मत नहीं हारना है क्योंकि हिम्मत हारकर यदि इस विनाशकारी क्रिया पर नियंत्रण नहीं किया गया तो वीर्य-नाश करने वाले को रोगी, दुर्बल, जर्जर, निरुत्साही और अल्पायु होने से साक्षात् धन्वन्तरी जैसे सामर्थ्यवान वैद्य भी नहीं बचा सकते हैं । संसार में ऐसा कोई वैद्य समर्थ नहीं जो धातुक्षय करने वाले पुरुष को दवा आदि के द्वारा हृष्ट-पुष्ट और दीर्घायु बना सके । उसे बहुत जल्दी मरना पड़ेगा **'मरणं बिन्दु पातेन'** । महाभारत में एक प्रसंग आया है – विचित्रवीर्य का विवाह हुआ था काशीराज की पुत्री अम्बिका और अम्बालिका से –

तयोः पाणी गृहीत्वा तु रूपयौवनदर्पितः ।
विचित्रवीर्यो धर्मात्मा कामात्मा समपद्यत ॥
ताभ्यां सह समाः सप्त विहरन् पृथिवीपतिः ।
विचित्रवीर्यस्तरुणो यक्ष्मणा समगृह्यत ॥

उन दोनों का पाणिग्रहण करके रुप और यौवन के अभिमान से भरे हुए धर्मात्मा विचित्रवीर्य कामात्मा बन गये और असंयमपूर्ण जीवन के कारण, वे युवावस्था में ही राजयक्ष्मा (टीबी, क्षयरोग) का शिकार होकर अल्पावस्था में ही मृत्यु को प्राप्त हो गए ।

श्रीपादप्रबोधानन्द जी ने लिखा है – **भ्रातः किं मरणं ?** मृत्यु क्या है ? **'मलैक निलय स्त्रीपिण्डे भोगस्पृहा'** 'मल-मूत्र के पिण्ड स्त्री शरीर को भोगने की जो स्पृहा है, वही मृत्यु है ।'

श्रीबिहारिनदेव जी ने भी कहा है –

कंठ कलीली कामिनी जंघ जोंक लगि जोय ।
लोहू अंग न पाईयै रह्यो आपकौं रोय ॥

इसलिए अगर मृत्यु से बचना है तो चाहे गृहस्थ हो या विरक्त सबको वीर्य-रक्षण करना ही पड़ेगा अन्यथा भरी जवानी में बिना किसी रोग के ही वृद्ध पुरुष की तरह जर्जर, दुर्बल व ढीला बनना सुनिश्चित है और अकाल मृत्यु भी सुनिश्चित है । अतः शास्त्रों की आज्ञा है –

'अकामतः स्वयमिन्द्रियस्पर्शेन वीर्यस्खलनं विहाय
वीर्यं शरीरे संरक्ष्य ऊर्ध्वरेताः सततं भव ।'

हाथ से शिश्नेन्द्रिय के द्वारा वीर्य-स्खलन नहीं करो अपितु वीर्य को शरीर में रक्षित कर ऊर्ध्वरेता बनो ।

किसी विशिष्ट चिकित्सक ने कहा है –'हस्तमैथुन वह जबरदस्त कुल्हाड़ा है, जिसे अज्ञानी युवक अपने ही हाथों अपने पैरों में मारता है और चेत तब होता है, जब हृदय, मस्तिष्क, आमाशय व मूत्राशय निर्बल हो जाते हैं तथा स्वप्नदोष, शीघ्रपतन, प्रमेह आदि रोग आ घेरते हैं ।'

इस कुकृत्य के कारण बहुत से लोगों का सर्वनाश हो रहा है । अज्ञानता तथा कुसंग के कारण बालक, नवयुवक तथा अन्य भी लोग इस दुष्कर्म में प्रवृत्त हो रहे हैं, प्रारम्भ में तो उन्हें इस क्रिया में बड़ा सुख प्रतीत होता है, पर कुछ दिनों में इसके हानिकारक परिणाम भी उन्हें ज्ञात होने लगते हैं । यदि उस समय भी यह रोग छूट जाय तब कुछ सुधार भी हो जाता है अन्यथा इससे जो रोग उत्पन्न होते हैं, वे स्थायी होते हैं और वे लाखों प्रयत्न करने पर भी आजीवन नहीं मिटते हैं ।

वीर्यक्षय से होने वाली हानियाँ

आज नवयुवकों में यह रोग भीषण रूप से फैला हुआ है । एक बार जो इसके चक्कर में पड़ जाता है, फिर आमरण इस संहारकारी रोग से वह मुक्त नहीं हो पाता है । यह बीमारी बड़े-बड़े विद्वानों तक में भी फैली हुई है और यह बड़ी निर्दयता से मनुष्य के शरीर को निचोड़ रही है। इससे इतनी हानियाँ होती हैं कि जिनका उल्लेख कर पाना भी संभव नहीं है ।

जिस प्रकार लकड़ी में घुन लग जाने से वह बिल्कुल खोखली हो जाती है, उसी प्रकार हस्त-क्रिया के द्वारा वीर्य के स्खलन से लोगों की अवस्था जर्जरित हो जाती है । इससे शिश्नेन्द्रिय की सब नसें ढीली पड़ जाती हैं, इन्द्रिय-शिथिलता के कारण वीर्य बहुत जल्दी गिरने लगता है । बार-बार स्वप्नदोष होने लगता है । जरा-सी भी विषय-सम्बन्धी बात मन में उदित हुई, इतने से ही वीर्य गिरने लगता है और अन्त में कुछ दिनों बाद भरी जवानी में ही मनुष्य नपुंसक होकर बुढ़ापे का अनुभव करने लगता है ।

निरन्तर धातुक्षय होने से धातु में क्षीणता आ जाती है और दृष्टि की कमी, क्षुधा, तृषा, मन्दाग्नि, स्वप्नदोष, उन्माद, बुद्धि-भ्रंश, क्षय, मधुमेह आदि रोग उत्पन्न होते हैं ।

ऐसा मनुष्य स्त्री-समागम के भी सर्वथा अयोग्य हो जाता है । उसका वीर्य पानी की तरह बिल्कुल पतला हो जाता है । हस्त-मैथुन द्वारा वीर्य निकलने से कलेजे पर बड़े जोरों का धक्का लगता है । इस धक्के से खाँसी, श्वास, यक्ष्मा जैसे भयानक रोग उत्पन्न हो जाते हैं और मनुष्य की आयु क्षीण हो जाती है । मन अत्यंत दुर्बल हो जाता है,

संकल्पशक्ति कमजोर हो जाती है, स्वभाव चिड़चिड़ा हो जाता है, जरा भी प्रतिकूलता सहन नहीं होती, आत्मविश्वास कम हो जाता है, काम करने में उत्साह नहीं रहता, शरीर में आलस्य छाया रहता है, चित्त सदा सशंकित रहता है, मन में विषाद छाया रहता है, कोई भी नया काम हाथ में लेने में भय मालूम होता है, थोड़े-से भी मानसिक परिश्रम से दिमाग में थकान आ जाती है, बुद्धि मंद हो जाती है, अधिक सोचने की शक्ति नहीं रहती, असमय में ही वृद्धावस्था आ घेरती है और स्वल्पायु में मनुष्य काल के गाल में चला जाता है, चित्त स्थिर नहीं हो पता, मन और इन्द्रियाँ वश में नहीं हो पातीं और मनुष्य भगवत्प्राप्ति के मार्ग से कोसों दूर हट जाता है। वह न इस लोक में सुखी रह पाता है और न ही परलोक में।

नष्टवीर्य पुरुष सदा डरता रहता है, अपने से बड़े लोगों के सामने आँख उठाकर भी नहीं देख सकता है । वह सदा किसी महान अपराधी की भाँती शर्मिन्दा होकर नीचे देखता है अथवा मुख छिपाता फिरता है । सदा निरुत्साहित रहता है । उसकी आँखें भीतर धँस जाती हैं । गाल पिचक जाते हैं । आँखों के नीचे गड्ढा हो जाता है और काले धब्बे पड़ जाते हैं । बाल पकने और झड़ने लगते हैं । शरीर सूखता चला जाता है। अंग-प्रत्यंगों में शिथिलता छा जाती है । अच्छे कार्यों में उसका मन नहीं लगता है । थोड़े से परिश्रम से ही उसे थकावट आ जाती है । थोड़ा-सा दुःख उसे पहाड़ की तरह प्रतीत होने लगता है । द्वन्द्वों को सहने में वह सर्वथा असमर्थ हो जाता है । बार-बार भूख लगती है । अपच और कब्ज होता है । उसे अच्छी तरह नींद नहीं आती है । जागने पर भी उसके नेत्रों में आलस भरा रहता है । रात्रि में स्वप्न दोष होता है। वीर्य पतला हो जाता है । पेशाब के साथ बूँद-

बूँद करके वीर्य गिरने लगता है । पुंस्त्व नष्ट हो जाता है । मुँह पर मुँहासे निकल आते हैं । उठते समय आँखों के सामने अँधेरा छा जाता है । बहुत जल्दी उसे भूलने की आदत हो जाती है । उसका चित्त अत्यंत चंचल व दुर्बल हो जाता है। कोई भी कार्य पूरा किये बिना ही वह छोड़ देता है । वह क्षण-क्षण में विचारों को बदलता रहता है । उसकी आँखों में जलन पैदा होती है – ये सब वीर्यनाश के लक्षण हैं। जो हस्त क्रिया के द्वारा ब्रह्मचर्य क्षीण करते हैं, वे प्रतिक्षण काम से युक्त रहते हैं और उनके अन्दर वही चिंतन चलता रहता है । वीर्य-क्षय से मन मलिन हो जाता है । बड़े-बड़े श्रेष्ठ पुरुष भी ब्रह्मचर्य से पतित होते ही संसार में श्रीहीन हो जाते हैं । वीर्य क्षय से धातु-रोग, रक्त-विकार, दृष्टि-हीनता आदि रोग उत्पन्न होते हैं । वीर्य-नाश से आनन्द, साहस, धैर्य, वीरत्व, तेज, शान्ति, ज्ञान और सद्विचार आदि सब दैवीय सम्पदा नष्ट हो जाती है और अति मैथुन से शूल, खाँसी, ज्वर, श्वास, दुर्बलता, पीलिया रोग, क्षय आदि रोग उत्पन्न हो जाते हैं ।

शूल कास ज्वर श्वास, कर्श्य पाण्ड्वामयक्षयाः ।
अति व्यवायाज्जायन्ते रोगाश्चाक्षेपकादयः ॥

वीर्य के अधीन ही शारीरिक और मानसिक सारी शक्तियाँ रहती हैं । इसी के प्रभाव से ब्रह्मचारियों का शरीर बल-वीर्य से पूर्ण, सुन्दर, हृष्ट-पुष्ट तथा पवित्र देखा जाता है । व्यभिचारी पुरुष क्षणिक सुख के लिए अपने वीर्य का नाश कर डालते हैं, अतः उनका शरीर निस्तेज, निर्बल तथा कुरूप हो जाता है । वीर्यनाश से ही मनुष्य की मृत्यु भी शीघ्र हो जाती है ।

इसलिए इस अमूल्य रत्न को केवल गर्भाधान के अभिप्राय से ही शरीर से बाहर निकालना चाहिए अन्यथा इसकी आवश्यकता न हो तो कभी भी शरीर से पृथक नहीं करना चाहिए ।

शुक्र (वीर्य) के निर्माण की प्रक्रिया

रसाद् रक्तं ततो मांसं मांसान्मेदः प्रजायते ।
मेदस्यास्थिः ततो मज्जा मज्जायाः शुक्रसंभवः ॥

जब जठराग्नि अन्न को पचाती है तो अन्न का जो सारभाग रस निकलता है उस रस से रक्त, रक्त से मांस, मांस से मेद, मेद से हड्डी, हड्डी से मज्जा और मज्जा से शुक्र (वीर्य) का निर्माण होता है ।

धातौ रसदौ मज्जान्ते प्रत्येकं क्रमतो रसः ।
अहोरात्रात्स्वयं पञ्च, सार्धं दण्डञ्च तिष्ठति ॥

रस से लेकर मज्जा तक प्रत्येक धातु पाँच दिन-रात और डेढ़ घड़ी (३६ मिनिट) तक अपनी अवस्था में रहती है । तदनन्तर वीर्य बनता है अर्थात् ३० दिन-रात और ९ घड़ी (पौने चार घण्टे) में रस से वीर्य की उत्पत्ति होती है ।

करीब एक महीने में एक दिन खाए हुए अन्न का वीर्य बनता है और करीब ४० दिन के भोजन का उतना वीर्य बनता है, जितना एक बार की मैथुन क्रिया में नष्ट हो जाता है ।

शरीर में कोई ऐसा स्थान विशेष नियत नहीं है, जहाँ शुक्र (वीर्य) विशेष रूप से विद्यमान रहता हो । शुक्र सम्पूर्ण शरीर अर्थात् सर्वांग में व्याप्त रहता है; यदि वीर्य एक स्थान पर रहने वाला पदार्थ होता, तो इसके संरक्षण या नाश का अच्छा-बुरा प्रभाव सब अंगों पर न पड़ता । **यथा पयसि सर्पिस्तु गूढ़श्चेक्षौ रसो यथा ।**
एवं हि सकले काये शुक्रं तिष्ठति देहिनाम् ॥

'जैसे दूध में घी और गन्ने में रस व्याप्त रहता है, उसी प्रकार देहधारियों के शरीर भर में शुक्र भी रहता है ।'

वीर्य का पाचन नहीं होता है, यह ओज एवं तेज का रूप धारण कर लेता है । इसी कारण जो संयम से चलता है तो उसका एक अलग ही स्वरूप होता है, उसमें एक अलग उत्साह, अलग तेज, अलग चमक होती है ।

अतः सावधान हो जाओ, इसको खिलवाड़ मत समझो । एक महीने की कमाई सप्तम धातु वीर्य (जो भगवत्स्वरूप है, जीवनी-शक्ति है) को लोग एक दिन में कितनी बार नष्ट कर रहे हैं । इसे मूर्खता नहीं कहा जाएगा तो क्या कहा जाएगा, जो इतनी कीमती वस्तु को केवल मनोरंजन के लिए बर्बाद कर रहे हो । ये घोर पतन का रास्ता है । ये कृत्य तन, मन और धन सबका नाश करने वाला है । सम्पूर्ण शरीर का सार है ब्रह्मचर्य । ब्रह्मचर्य के द्वारा ही हर परिस्थिति, हर द्वन्द्व को सहने की सामर्थ्य मिलती है । आज जितने मनुष्यों या साधकों की दुर्दशा हो रही है, उसका मूल कारण है शास्त्र विरुद्ध आचरण और ब्रह्मचर्य का नाश । यदि ब्रह्मचर्य की रक्षा की जाए तो ब्रह्मचर्य बहुत बड़ा अमृततत्त्व है लेकिन मूर्खता के कारण लोग इस पर ध्यान नहीं दे रहे हैं, यदि गृहस्थी हो तो भी संयम से चलो ।

जरा विचार करो, आप रात दिन पशुता का व्यवहार करके मलिन मन के द्वारा शान्ति प्राप्त करना चाहते हो, आनंद की अनुभूति करना चाहते हो तो कैसे हो सकता है ? आज यौवनावस्था है, समझ में नहीं आ रहा लेकिन ये आदत कल कहाँ पहुँचा देगी सोच भी नहीं सकते हो। जब पहुँच जाओगे फिर कोई रास्ता नहीं है बचने का। कितने ऐसे बच्चे हैं जो इस बात से दुखी हैं कि मैं क्या करूँ ? आत्महत्या कर लूँ । देखो पहुँचा दिया उन्हें मन ने वहाँ, जो अंतिम दुर्गति का केन्द्र है। यदि अभी सावधान नहीं हुए तो आप कुछ दिनों बाद ऐसे-ऐसे रोगों से ग्रसित हो जायेंगे कि ठीक से चलने लायक भी नहीं रहेंगे।

गृहस्थ में रहते हुए ब्रह्मचर्य से कैसे रहें ?

प्रायः स्थूल बुद्धिवाले लोग इतना ही समझते हैं कि ब्रह्मचर्य जीवन का काल विवाह के पूर्व समाप्त हो जाता है और विवाह हो चुकने पर फिर यथेष्ट विहार कर सकते हैं यानी विवाह से पूर्व तक ही संयम बरतना है विवाह होने पर तो मनचाहा स्त्री-संसर्ग कर सकते हैं लेकिन उन्हें यह पता नहीं है कि गृहस्थाश्रम का वास्तविक उद्देश्य सन्तानोत्पत्ति है न कि जननेन्द्रिय को तृप्त करना ।

यदि कोई गृहस्थ जीवन में है तो वह केवल शुद्ध संतानोत्पत्ति के लिए ही ब्रह्मचर्य खण्डित करे, अन्यथा नहीं, यही शास्त्राज्ञा है -

यद् घ्राणभक्षो विहितः सुरायास्तथा पशोरालभनं न हिंसा ।
एवं व्यवायः प्रजया न रत्या इमं विशुद्धं न विदुः स्वधर्मम् ॥

(श्रीमद्भा० ११/५/१३)

'सौत्रामणि यज्ञ में सुरा (मदिरा) को नासिका से सूँघने का विधान है, पीने का नहीं; यज्ञ में पशु के स्पर्श करने का विधान है, हिंसा का नहीं; इसी प्रकार गृहस्थ जीवन संतानोत्पत्ति के लिए हैं, विषय-भोग के लिए नहीं – यही विशुद्ध धर्म का स्वरूप है किन्तु इस अपने धर्म को लोग नहीं जानते हैं ।' श्रीमनु महाराज ने भी मनुस्मृति में कहा कि –

प्रजनार्थं स्त्रियः सृष्टाः सन्तानार्थञ्च मानवम् (मनुस्मृति)

'गर्भ धारण करने के लिए स्त्रियों और गर्भाधान करने के लिए पुरुषों की रचना हुई है । यदि कोई पुरुष सन्तान प्राप्ति के लिए अपनी स्त्री से ऋतुकाल में समागम करता है तो उसका ब्रह्मचर्य नष्ट नहीं माना जाता क्योंकि – **ऋतुकालाभिगमनं ब्रह्मचर्यमिवोच्यते ।**

'ऋतुकाल में संतानप्राप्ति के लिए अभिगमन (मैथुन) करना, यह ब्रह्मचर्य ही है ।'

ऋतावृत्तौ स्वदारेषु संगति र्या विधानतः ।
ब्रह्मचर्यं तदेवोक्तं गृहस्थाश्रमवासिनाम् ॥

ऋतुकाल में अपनी स्त्री से विधियुक्त अर्थात् शास्त्राज्ञानुसार केवल सन्तान के हेतु सामागम करने वाला पुरुष गृहस्थाश्रम में रहते हुए भी ब्रह्मचारी ही है ।

इसी तरह युवती स्त्री को चाहिये कि मासिक धर्म से शुद्ध होकर अपने पति से नियत समय में सन्तान के लिए समागम करे तो वह भी ब्रह्मचारिणी ही है –

या नारी पतिभक्ता स्यात्सा सदा ब्रह्मचारिणी ।

जो स्त्री केवल अपने पति से अनुराग रखती है, उचित समय पर संतति की इच्छा से सहवास कर गर्भ धारण करती है, वह सर्वदा ब्रह्मचारिणी कहलाती है किन्तु अपने पति के साथ भी अनियमित मैथुन करना, यह व्यभिचार है और यह पाप है । इसी तरह पुरुष भी ऋतुकाल के अलावा भले ही अपनी धर्मपत्नी से समागम करता है तो वह पाप है – **रजोदर्शनतः पूर्वं न स्त्री-संसर्ग माचरेत् ।**

'रजोदर्शन होने से पहले स्त्री से समागम करना निषेध है ।'

अतः संतति की प्राप्ति के लिए भगवत्प्रार्थना से युक्त होकर के कि हे करुणानिधान ! मैं आपकी आज्ञा का पालन करने के लिए अपने ब्रह्मचर्य को क्षीण करता हूँ और आपकी प्राप्ति के लिए यह गृहस्थ-धर्म रूपी पूजा स्वीकार करने के लिए आपसे प्रार्थना करता हूँ, यह पूजा है आप स्वीकार कीजिये ।

पूर्वकाल में आश्रम परम्परा में २५ वर्ष तक तो प्रायः सभी ब्रह्मचर्य धारण करते थे फिर जिनको गृहस्थ में जाना होता था वह

गृहस्थ में जाते थे और जिनको नैष्ठिक ब्रह्मचर्य का व्रत लेना होता था वे वैरागी होते थे। दोनों महान पुरुष बनते । एक गृहस्थ में जाकर के धर्म पूर्वक चलते हुए पुनः वैराग्य को धारण करता और दूसरा विरक्ति में जाकर महापुरुष बन जाता ।

लेकिन आज स्थिति यह है कि २५ वर्ष तक तो लोगों की बड़ी दुर्गति हो जाती है, क्योंकि अब कुंसग सुलभ हो गया है, ऐसे-ऐसे साधन चल पड़े हैं कि उनमें दृश्य देख-देखकर लोगों की भावनाएँ दूषित हो रही हैं और वो अपने जीवन को नष्ट कर रहे हैं । ब्रह्मचर्य नष्ट हो गया तो फिर ये अमूल्य मानव जीवन किस काम का रह गया। पूर्व में जब लोग संयम पूर्वक रहकर के गर्भाधान करते थे तो उनकी स्त्रियों के गर्भ से बड़े-बड़े धर्मनिष्ठ, भगवदनुरागी महापुरुष या देश व समाज के लिए सुखप्रद महान वीर पुरुष पैदा होते थे । गृहस्थ धर्म का भी एक नियम है, यदि उसमें ब्रह्मचर्य से रहा जाय तो निश्चित संतान दिव्य पैदा होती है ।

वह गृहस्थ धन्य है जो ब्रह्मचर्य पूर्वक संतानोत्पत्ति की क्रिया करके भगवान् की अराधना करता है ।

वे सद्-गृहस्थ बहुत महान हैं, जो गृहस्थ जीवन में भी संयम से रहकर के संत की तरह जीवन यापन कर रहे हैं अन्यथा विरक्त साधक होकर के भी गंदे आचरणों की प्रवृत्ति बनी रहती है । जो सद्-गृहस्थ तरुणावस्था से ही यह संकल्प ले लेते हैं कि हम आजीवन ब्रह्मचर्य से रहेंगे और उस संकल्प को पूरा करने में जो स्त्रियाँ अपने पति का सहयोग करती हैं, वे निश्चित ही कृपापात्र हैं।

गृहस्थ जीवन में ऐसे महापुरुष हुए हैं, जिन्होंने कभी अपनी स्त्री से संसर्ग नहीं किया, जैसे श्रीकबीरदासजी हुए उनकी स्त्री का नाम लोई था, कबीरदास जी ने कभी अपनी पत्नी से संसर्ग नहीं किया ।

उनके जो पुत्र-पुत्री कमाल और कमाली थे, वे उन्हें दैवेच्छा से प्राप्त हुए थे न कि सन्तानोत्पत्ति की क्रिया से । कबीरदास जी ने कहा है -

दास कबीर ने ऐसी ओढ़ी, ज्यूँ की त्यूं धर दीन्हि रे चदरिया ।

इसी तरह से गीतगोविन्दकार श्रीजयदेवजी हुए हैं, उनकी धर्मपत्नी का नाम पद्मावती था, श्रीजगन्नाथ जी की इच्छा से जयदेव जी को विवाह करना पड़ा, किन्तु कभी स्त्री के साथ उन्होंने संसर्ग नहीं किया । उनकी स्त्री ने भी उनके नियम पालन में पूर्ण सहयोग किया।

प्रभु की बड़ी कृपा है उनके ऊपर जो दम्पत्ति संयमपूर्वक जीवन बिताना चाहते हैं । विषय-भोग करना, स्वाप्निक भोगों में फँसना कोई कर्तव्य नहीं है । कर्तव्य तो एकमात्र यही है इस साधनधाम दुर्लभ मनुष्य शरीर से प्रभु के चरणारविन्दों का प्रेम प्राप्त करना । श्रीमद्भागवत में ऋषभ भगवान् ने अपने पुत्रों को उपदेश देते हुए यही बताया था कि -

नायं देहो देहभाजां नृलोके कष्टान् कामानर्हते विड्भुजां ये ।
तपो दिव्यं पुत्रका येन सत्त्वं शुद्धयेद्यस्माद् ब्रह्मसौख्यं त्वनन्तम् ॥

(श्रीमद्भा० ५/५/१)

'मनुष्य लोक में शरीरधारी मनुष्यों का यह शरीर कष्ट देने वाले विषयों को भोगने के लिए नहीं है, क्योंकि यह विषय-भोग तो शूकरादि योनियों में सुलभ हैं । अतः हे पुत्रो ! इस शरीर से संयम पूर्वक रहते हुए दिव्य तप करना चाहिए, जिससे अन्तःकरण शुद्ध होता है और अपार आनंद की अर्थात् भगवद्-रस की प्राप्ति होती है ।'

आज ये जो बात हमारे हृदय में बैठ गई है कि 'हम तो गृहस्थी हैं, हमें तो भोग-भोगने का लाइसेंस मिल गया', - ये पूर्ण निकृष्टता की बात है । हाँ, जो संयमपूर्वक नहीं रह पा रहा है तो उसके लिए शास्त्रीय विधान है कि वह ऋतुकाल में स्त्री-समागम कर सकता है,

परन्तु तब जब संतानोत्पत्ति की लालसा हो । नहीं तो वास्तविक बात तो यही है कि ब्रह्मचर्य से युक्त होकर के भगवदाराधन करते हुए आत्मकल्याण करके ये जन्म सुधार लिया जाय । इन भोगों की तो अन्य योनियों (सुअर, कुत्ता आदि) में बहुतायत है - सभी इन्हीं भोगों में रमे हुए हैं । इसलिए मनुष्य जीवन विषय-भोग रूपी कर्तव्य के लिए नहीं है । मनुष्यमात्र का तो एकमात्र यही धर्म है, प्रभु के चरणों में भक्ति हो जाना –

स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे ।
अहैतुक्यप्रतिहता ययाऽऽत्मा सम्प्रसीदति ॥ (श्रीमद्भा० १/२/६)

'अधोक्षज भगवान् में अपना चित्त समर्पित हो जाना, उनके चरणों में प्रेम हो जाना - यही परम धर्म है जीवमात्र का । इसीलिये भगवान् गीताजी में आदेश करते हैं कि -

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥ (१८/६६)

'सब धर्मों (कर्तव्यों) को छोड़ो और केवल मेरे चरणों का आश्रय लो।

यदि संयम से चलोगे तो गृहस्थ-धर्म में रहकर भी भगवत्प्राप्ति के योग्य हो जाओगे । भगवान् ने गृहस्थ का इसीलिये रास्ता दिया कि पति-पत्नी मिलकर के काम पर विजय प्राप्त करें, इसलिए नहीं दिया कि रोज भ्रष्ट होते रहें । गृहस्थाश्रम एक सुरक्षित किला है जिसकी आड़ में उच्छृंखल काम प्रवृत्ति से बचा जा सकता है ।

ब्रह्मचर्य हानि का मतलब है कि तुम रोज मर रहे हो । रोज मृत्यु को गले लगा रहे हो । संयम से चलोगे तो आनंदित रहोगे । संयम एक बहुत बड़ी शक्ति है । जिसके निकालने में लोग आनंद समझते हैं उसके रोकने में कितना आनंद होगा ? केवल संतान उत्पत्ति के लिए संग करो। हम लोग ब्रह्मर्षियों की संतानें हैं, उन्होंने भी तो

स्त्री-संग किया लेकिन शास्त्रीय सिद्धांत के अनुसार, बड़े-बड़े गृहस्थ आचार्य भी हुए, उनकी संतानें भी हुईं अतः एकपत्नीव्रती ब्रह्मचारी ही कहा जाता है ।

कोई ऐसा न समझे कि हम तो छिपकर व्यभिचार कर लेंगे क्योंकि हमें कोई देख नहीं रहा है, अरे! तुम कहाँ तक छिपोगे, हमारे कर्मों के १४ साक्षी होते हैं, जो हमारे कर्मों को देखते हैं, उनसे हम कहीं छिप ही नहीं सकते हैं – सूर्य, अग्नि, आकाश, वायु, इन्द्रियां, चन्द्रमा, संध्या, रात, दिन, दिशाएं, जल, पृथ्वी, काल और धर्म–ये सब कर्मों के साक्षी हैं ।

जै श्रीहित हरिवंश नरक गति दुरभर, यम द्वारे कटियत नक छीके ।

वहाँ यमलोक में ऐसा हिसाब है कि कहाँ छींका, कब छींका, इतने पर ही वहाँ नाक काट दी जाती है । वहाँ उँगली उठाने पर भी दण्ड है कि कहाँ उँगली उठायी, किसको उठायी, क्यों उठायी अर्थात् वहाँ एक-एक कर्म का हिसाब होता है । यदि कोई सोचता है कि मुझे कौन देख रहा, मौज-मस्ती कर लो, तो यह अच्छी तरह से समझ लो कि आप बच नहीं सकते हो निश्चित नारकीय यातनायें भोगनी पड़ेंगी।

अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम् ।

'मनुष्य को निजकृत शुभ या अशुभ कर्म का फल अवश्य मिलता है।'

यत् करोत्यशुभं कर्म शुभं वा यदि सत्तम ।
अवश्यं तत् समाप्नोति पुरुषो नात्र संशयः ॥

'मनुष्य जो शुभ या अशुभ कार्य करता है, उसका फल उसे अवश्य भोगना पड़ता है, इसमें संशय नहीं है।'

स्वयं कर्म करोत्यात्मा स्वयं तत्फलमश्नुते।
स्वयं भ्रमति संसारे स्वयं तस्माद् विमुच्यते ॥

'जीव स्वयं कर्म करता है और स्वयं उसका शुभाशुभ फल भोगता है। वह अपने ही कर्म से संसार में चक्कर लगाता है और अपने ही कर्मों से इन सबसे मुक्त भी होता है ।'

इसीलिये श्रीकृष्णचन्द्रजू महाराज ने गीता जी में कहा –

उद्धरेदात्मनाऽत्मानं नात्मानमवसादयेत् ।
आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः ॥ (गी. ६/५)

'अपने द्वारा अपना संसार-समुद्र से उद्धार करें और अपने को अधोगति में न डालें क्योंकि यह मनुष्य आप ही तो अपना मित्र है और आप ही अपना शत्रु है ।'

इसीलिये सावधान - **भूलि न देहिं कुमारग पाऊ।**

यदि कोई पुरुष काम से पीड़ित होकर के अगम्यागमन करता है अथवा स्त्री कामातुर होकर के पर पुरुष से समागम करती है तो उन्हें तप्तसूर्मी नामक नरक में जाना पड़ता है । वहाँ तपाये हुए लोहे की स्त्री मूर्ति से पुरुष को एवं तपाये लोहे के पुरुष से स्त्री को बहुत काल तक आलिंगन कराया (चिपकाया) जाता है । ये दण्ड मिलता है -

सूर्म्या लोहमय्या पुरुषं आलिंगयन्ति स्त्रियं च पुरुष रूपया सूर्म्या ।
(श्रीमद्भा० ५/२६/२०)

श्रीरामचरितमानस में अनुसूया जी ने भी कहा है –

पति बंचक परपति रति करई । रौरव नरक कल्प सत परई ॥
छन सुख लागि जनम सत कोटि। दुख न समुझ तेहि सम को खोटी॥
पति प्रतिकूल जनम जहँ जाई । बिधवा होइ पाइ तरुनाई ॥ (३/५)

जो स्त्री अपने पति को छोड़कर किसी पर पुरुष को कामुकता की दृष्टि से देखती हैं, उससे संपर्क करती है तो उसे सौ कल्पतक रौरव नरक में पड़ा रहना पड़ता है । क्षणभर के सुख के लिए जो सौ करोड़ (असंख्य) जन्मों के दुःख को नहीं समझती, उसके समान दुष्टा कौन

होगी। जो पति के प्रतिकूल चलती है, वह जहाँ भी जाकर जन्म लेती है, वहीं भरी जवानी में विधवा हो जाती है और यदि स्त्री पातिव्रत धर्म से चलती है, तो उसे बिना कुछ साधना किये इतने से ही परम गति की प्राप्ति हो जाती है –

बिनु श्रम नारि परम गति लहई। पतिब्रत धर्म छाड़ि छल गहई ॥

जो स्त्री छल छोड़कर पातिव्रत धर्म को ग्रहण करती है, वह बिना ही परिश्रम परम गति को प्राप्त करती है ।

अतः स्त्री-पुरुष दोनों को व्यभिचार से बचना चाहिए क्योंकि –

दुराचारो हि पुरुषो लोके भवति निन्दितः ।
दुःखभागी च सततं व्याधितोऽल्पायुरेव च ॥ (मनु स्मृति)

'दुराचारी मनुष्य संसार में निन्दा का पात्र, सदा दुखी, रोग-ग्रस्त और अल्पायु होता है ।'

अतः अगर भ्रष्ट आचरण करोगे तो तुम्हारी संतान कैसे बलवान होगी। गृहस्थी में भी जाना है तो तब तक पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन करें जब तक आप गृहस्थ धर्म से युक्त न हो जाएँ और यदि विरक्त हैं तो आजीवन ब्रह्मचर्य धारण करें; थोड़े दिन यद्यपि जलन होगी लेकिन इसको यदि आप सह जायेंगे तो बहुत आनंद में रहेंगे, बड़ी शीतलता मिलेगी, द्वंदों से लड़ने की सामर्थ्य आयेगी, भगवत्प्राप्ति का उत्साह होगा ।

अष्टांग मैथुन का त्यागी ही सच्चा ब्रह्मचारी

योगदर्शन के भाष्य में भाष्यकार श्रीवेदव्यासजी ब्रह्मचर्य की परिभाषा लिखते हैं – **'ब्रह्मचर्य गुप्तेन्द्रियस्योपस्थस्य संयमः ।'** अर्थात् गुप्त (उपस्थ) इन्द्रिय के संयम को ब्रह्मचर्य कहते हैं । अन्यत्र ब्रह्मचर्य की और सूक्ष्म व्याख्या भी मिलती है -

'ब्रह्मचर्य नाम सर्वावस्थासु मनोवाक्कायकर्मभिः सर्वत्र मैथुनत्यागः ।'

कायेन मनसा वाचा सर्वावस्थासु सर्वदा ।
सर्वत्र मैथुन-त्यागो, ब्रह्मचर्यं प्रचक्षते ॥

शरीर, मन और वचन से सभी अवस्थाओं में, सर्वदा और सर्वत्र मैथुन (सम्भोग) के त्याग को ब्रह्मचर्य कहा जाता है ।

कायिक ब्रह्मचर्य – आलिंगन, चुम्बन, अंगमर्दन तथा उपस्थेन्द्रिय के सञ्चालन से रहित होना ।

मानसिक ब्रह्मचर्य – विषय-चिंतन, सम्भोग के मनोरथ आदि को भलीभाँति त्याग देना ।

वाचिक ब्रह्मचर्य – प्राकृत प्रेमालाप, विषय सम्बन्धी चर्चा, गुह्य भाषण आदि से रहित होना ।

स्मरणं कीर्त्तनं केलिः प्रेक्षणं गुह्यभाषणम् ।
संकल्पोऽध्यवसायश्च क्रियानिष्पत्तिरेव च ॥
एतन्मैथुनमष्टांगं प्रवदन्ति मनीषिणः ।
विपरीतं ब्रह्मचर्यमनुष्ठेयं मुमुक्षुभिः ॥ (दक्ष संहिता)

स्मरण, कीर्त्तन, केलि, प्रेक्षण, गुप्तभाषण, संकल्प, अध्यवसाय और क्रिया-निष्पत्ति – ये मैथुन के आठ अंग मनीषियों ने बताए हैं, इसके विपरीत इन सबका त्याग ही पूर्ण ब्रह्मचर्य माना जाता है ।

(१) **स्मरण** – किसी चित्र या दृश्य में देखे हुए स्त्री के रूप का काम-भाव से चिंतन करना अथवा किसी आस-पड़ौस की रूपवती स्त्री को देखकर लंपट होकर निरन्तर उसका स्मरण करना; इससे ब्रह्मचर्य नष्ट हो जाता है। इसलिए यदि बुरे विचार कभी मन में उदित हों तो उन्हें तत्काल दूर कर देना चाहिए, कदापि मन में जमने नहीं देना चाहिए । वेदों में लिखा है **'तन्मे मनः शिव संकल्पमस्तु'** मेरा मन शुद्ध विचारों वाला हो।

श्रीनारदजी महाराज ने भी भक्तिसूत्र में कहा है कि 'स्त्री, धन, बैरी तथा नास्तिक का चरित्र श्रवण नहीं करना चाहिए।' क्योंकि हम जिसकी चर्चा करते हैं तो हमारा चित्त उसी का चिंतन करने लगता है। जैसे किसी स्त्री के रूप और स्वभाव आदि की चर्चा सुनी तो मन उसी का चिंतन करने लगेगा और **'यस्य मनः स्त्रियाश्चिन्तने संलग्नं स भगवच्चिन्तनं कथमपि न कर्तुं शक्नोति ।'** जिसका मन स्त्री के चिंतन में संलग्न है, उसकी सामर्थ्य नहीं है कि वह भगवच्चिन्तन कर सके । जब हम स्त्री-सम्बन्धी चर्चा (स्त्री के रूप के विषय में वार्ता या स्त्री सुख की चर्चा) करते हैं तो हमारा चित्त उसका चिन्तन करने लगता है क्योंकि चित्त एक शुभ्र (श्वेत) वस्त्र की भाँति है, जो कुछ हम देखते हैं, सुनते हैं या चिंतन करते हैं वैसा ही रंग उस पर चढ़ जाता है, यदि हम आँखों से स्त्री के रूप को देखेंगे, कान से स्त्री-सुख-सम्बन्धी वार्ता सुनेंगे तो वही चिंतन चलने लगेगा और निश्चित हम भ्रष्ट हो जायेंगे ।

श्रीकपिल भगवान् ने कहा है –

न तथास्य भवेन्मोहो बन्धश्चान्यप्रसङ्गतः ।
योषित्सङ्गाद्यथा पुंसो यथा तत्सङ्गिसङ्गतः ॥ (श्रीमद्भा० ३/३१/३५)

'इस पुरुष को किसी और के साथ से वैसा अज्ञान और बंधन नहीं हो सकता है, जैसा स्त्रियों के संग से अथवा स्त्रियों के चक्कर में

रहने वालों के साथ से होता है ।' (यही सूत्र स्त्री साधकों के लिए भी है।)

(२) **कीर्त्तन** – स्त्रियों के रूप, गुण और अंगों की चर्चा करना अथवा विषय-सम्बन्धी गीत गाना या गंदी बातें करना । काम सम्बन्धी चर्चा विषयी पुरुषों के पास ज्यादा मिलती है । इसीलिये उनका संग बिल्कुल हानिकारक है ।

(३) **केलि** – स्त्रियों के साथ खेल खेलना, हँसी-मजाक करना, अधिक बैठना-उठना आदि । बहुत लोगों की आदत होती है कि वे स्त्रियों में बैठकर हँसी-मजाक करते हैं, इन बातों से काम-वासना बढ़ती है, अंगों में उत्तेजना उत्पन्न होती है तथा वीर्य अपने स्थान से च्युत होता है ।

(४) **प्रेक्षण** – कामुकता की दृष्टि से स्त्रियों को घूरना, छिपकर के उन्हें देखना ।

(५) **गुह्य भाषण** – किसी स्त्री से एकांत में बातचीत करना । साधक को कभी भी ऐसी गलती नहीं करनी चाहिए । भले ही वह भगवत्-सम्बन्धी वार्ता ही क्यों न हो ? सबके सामने करे एकान्त में नहीं; क्योंकि पहले अपनी स्थिति देख ले कि क्या अभी हमारा पुरुषत्व का अभिमान सर्वथा नष्ट हो गया है अर्थात् किसी भी भावना से आपके हृदय में ये भाव नहीं आयेगा कि यह भोग्य-वस्तु है, तो फिर प्रभु की आप पर अपार कृपा है फिर त्रिभुवन में आपको कोई पतित नहीं कर सकता क्योंकि –

'न हि स्वात्मारामं विषयमृगतृष्णा भ्रमयति ॥'
'ब्रह्मानन्दे निमग्नस्य विषयाशा न तद्भवेत् ॥'

जो आत्माराम बोधसंपन्न महापुरुष हैं जब उन्हें सर्वत्र सच्चिदानंद प्रभु दीख रहे हैं तो कौन उनको भ्रष्ट कर सकता है, लेकिन जब तक स्त्रीत्व-पुरुषत्व का अहं है, तब तक विपरीत शरीरधारी साधक

के साथ एकान्त में संभाषण करने से बचना चाहिए; लोकसंग्रह की दृष्टि से भी । यदि अति आवश्यक हो यानी बात करनी ही पड़े तो खुले में करो, जहाँ सब लोग आपको देख रहे हों । यदि आप एकांत में ऐसा कर रहे हैं तो आप ब्रह्मचर्य से नहीं रह सकते हो, ऐसा शास्त्र का कथन है ।

(६) **संकल्प** – किसी स्त्री को देखकर मैथुन का संकल्प करना ।

(७) **अध्यवसाय** – उस संकल्प को पूरा करने के लिए उपाय करना । अर्थात् शील-लज्जा आदि को छोड़कर उचित-अनुचित का विचार न करते हुए गंदे कृत्य करने के लिए निश्चय करना ।

(८) **क्रिया-निष्पत्ति** – क्रिया पूरी करना अर्थात् सम्भोग करके वीर्य स्खलित करना । इन ८ गलतियों से ब्रह्मचर्य क्षीण हो जाता है । ये जो ब्रह्मचर्य के नाशक अष्ट प्रकार के भाव हैं, इनसे पूर्णतया बचना चाहिए ।

जो साधक या साधिका ब्रह्मचर्य से रहना चाहें वे कभी भी कामुकता की दृष्टि से परस्पर शरीरों को न देखें और न ही कभी भी किसी भी भावना से विपरीत शरीरधारी को अपने निकट आने दें तथा न स्वयं उनके सन्निकट जायें । ऐसा भाव कभी मन में न आये कि मैं तो सिद्ध हूँ, मैं जैसा चाहूँ मनमाना आचरण कर सकता हूँ । भगवान व्यासदेव जी ने लिखा है कि बड़े-बड़े विद्वान् भी इस आकर्षण में गिर सकते हैं –

मात्रा स्वस्रा दुहित्रा वा न विविक्तासनो भवेत् ।
बलवानिन्द्रियग्रामो विद्वांसमपि कर्षति ॥ (भा. ९/१९/१७)

'मनुष्य को चाहिये कि अपनी माता, बहन अथवा पुत्री के साथ भी कभी एकान्त में न रहे; क्योंकि इन्द्रियाँ बड़ी प्रबल होती हैं, वे विद्वान पुरुष को भी अपनी तरफ खींच लेती हैं ।'

गृहस्थ उपासक को भी अपनी पत्नी के सिवाय कभी भी किसी स्त्री से एकांत में संभाषण नहीं करना चाहिए ।

श्रीकपिल भगवान् ने कहा है कि 'जो पुरुष योग के परम पद पर आरूढ़ होना चाहता हो अथवा जिसे मेरी (प्रभु की) सेवा के प्रभाव से आत्मा-अनात्मा का विवेक हो गया हो, वह स्त्रियों का संग कभी न करे; ऐसा करने पर उसका पतन सुनिश्चित है।'

अतः साधक को सदैव मार्ग में दृष्टि झुकाकर के चलना चाहिए ताकि कोई ऐसा दृश्य सामने न आ जाए जो विचलित कर दे । अजामिल के साथ यही तो हुआ था, वह बड़ा सदाचारी और समस्त दिव्य सद्गुणों से सम्पन्न, शास्त्र और गुरु की आज्ञा में चलने वाला उच्च कोटि का साधक था लेकिन एक दृश्य (वैश्या और शूद्र के विहार) ने उसको कितना पतित बना दिया ।

इसी तरह सौभरी ॠषि यमुना जल में तप कर रहे थे उनको भी एक दृश्य (मछली के विहार) ने ऐसा विचलित किया कि उन्हें मान्धाता की ५० कन्याओं से विवाह करना पड़ा और ५ हजार संतानों की उत्पत्ति हुई, बाद में बहुत पछताए और बोले –

अहो इमं पश्यत मे विनाशं तपस्विनः सच्चरितव्रतस्य ।
अन्तर्जले वारिचरप्रसङ्गात्प्रच्यावितं ब्रह्म चिरं धृतं यत् ॥
सङ्गं त्यजेत मिथुनव्रतिनां मुमुक्षुः
सर्वात्मना न विसृजेद् बहिरिन्द्रियाणि ॥
एकश्चरन् रहसि चित्तमनन्त ईशे
युञ्जीत तद्व्रतिषु साधुषु चेत् प्रसङ्गः ॥ (श्रीमद्भा० ९/६५/५०,५१)

'तपस्वी, सदाचारी, व्रतों का पालन करने वाले मेरे इस विनाश को देखो । जल के अन्दर मछली के प्रसंग से मैंने अपने ब्रह्मतेज को नष्ट कर दिया, जो चिरकाल से धारण किया था । मोक्ष का इच्छुक

साधक भोगी प्राणियों का संग त्याग दे । सब प्रकार से इन्द्रियों को अन्तर्मुख कर ले। अकेला ही रहता हुआ एकान्त में मन को प्रभु में लगा दे । यदि संग करे तो भगवत्प्रेमी महात्माओं का करे ।'

इसलिए मन पर कभी विश्वास नहीं करना कि हम बड़े ऊँचे संयमी साधक हैं, हमारे ऊपर किसी दृश्य का कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा। सावधान ! अगर इस तरह से मन की बात मानकर असावधानी पूर्वक हमने व्यवहार किया तो पतन होने से कोई बचा नहीं सकता है ।

इसलिए विपरीत शरीरधारी साधक से बात भी करो तो नजर झुकाकर के । इस तरह से इस आकर्षण से बचा जा सकता है, अगर नेत्र से नेत्र मिलाकर के देखोगे तो तुम्हारे चित्त का हरण हो जाएगा -

दर्शनात् हरते चित्तं, स्पर्शात् हरते बलम् ।
भोगात् हरते वीर्यं, स्त्री प्रत्यक्षा राक्षसी ॥

अर्थात् स्त्री शरीर को देखने मात्र से चित्त का हरण होता है (मन उन पर मोहित हो जाता है), उसके स्पर्श से बल का हरण होता है और उसके साथ समागम करने से वीर्य का हरण होता है, अतएव पराई स्त्री पुरुष के लिए और पर-पुरुष स्त्री के लिए साक्षात् विपत्ति के समान है; इसलिए महापुरुषों ने कहा है –

अरे नर परनारी मत ताक रे ।
जिन जिन ओर डायन के तिन तिन को गयी भाख रे ॥
दृष्ट्वा स्त्रियं देवमायां तद्भावैः अजितेन्द्रियः ।
प्रलोभितः पतत्यन्धे तमस्यग्नौ पतङ्गवत् ॥ (श्रीमद्भा० ११/८/७)

'जैसे रूपासक्त पतंगा अग्नि में जा गिरता है । वैसे ही अजितेन्द्रिय पुरुष भी देवमाया स्त्री को देखकर उसके हाव-भावों से मोहित होकर घोर अन्धकार में गिर जाता है ।' यही बात स्त्री साधकों को पुरुष वर्ग के लिए ध्यान रखनी है ।'

जब तक पूर्ण भगवदाकार वृत्ति नहीं हो जाती, तब तक 'काम' का संस्कार रहता ही है क्योंकि पूर्व जन्म-जन्मान्तरों के संस्कार चित्त पर जमा हैं । लेकिन जब हम सावधानी पूर्वक चलेंगे तो एक दिन ऐसा आयेगा कि हृदय एक दम शान्त और निर्मल होने लगेगा, संस्कार तनुत्व (कमजोर) अवस्था को जैसे-जैसे प्राप्त होंगे तो तरंगों की भाँति हो जायेंगे और फिर अन्ततोगत्वा दग्धबीज हो जायेंगे ।

न मय्यावेशितधियां कामः कामाय कल्पते ।
भर्जिता क्वथिता धाना प्रायो बीजाय नेष्यते ॥ (भा. १०/२२/२६)

'जिनकी बुद्धि प्रभु में लगी हुयी है उनके अन्दर काम पैदा नहीं हो सकता। जैसे जिन बीजों को भून या उबाल दिया जाता है, वे अंकुर के रूप में उगने योग्य नहीं रह जाते हैं।' किन्तु ये संस्कार बहुत दूर तक रहते हैं, जब तक भगवत्प्राप्ति नहीं होती तब तक रहते ही हैं । चिंगारी रूप से बने रहते हैं और जहाँ इनको हवा और ईधन मिला तो ज्वाला रूप हो जाते हैं । श्रीनारदजी महाराज कह रहे हैं कि जब उनको संयोग मिलता है तो वे समुद्र की भाँति हो जाते हैं – **'तरंगायिता अपीमे संगात्समुद्रायन्ति ॥'** 'अर्थात् दुःसंग से ये (कामक्रोधादि) तरंग रूप से समुद्र जैसे विशालकाय रूप ग्रहण कर लेते हैं ।'कोई ये न समझ ले कि अवस्था से इनका नाश होता है । अवस्था से नहीं अपितु भगवत्प्राप्ति से नाश होता है, अब भगवत्प्राप्ति जब हो जाए तब आप निष्काम हो जायेंगे । जो भगवत्प्राप्त महापुरुष हैं त्रिकाल में ऐसा नहीं हो सकता कि कोई विकार आकर के अपना प्रभाव उनके ऊपर दिखा सके । जहाँ अभी थोड़ा भी जीवत्व है तो ये चिंगारी रूप में रहते हैं । यद्यपि चिंगारी में ताकत नहीं है लेकिन अगर उसको मसाला (ईंधन) मिल जाए तो ज्वाला होने में देर नहीं लगती है । इसलिए जो अच्छे भजनानंदी साधक होते हैं वह भी डरते रहते हैं विषयों से।

जैसे कोई साधक कहे हम तो किसी माता-बहिन को भगवद्भाव से देखते हैं लेकिन शास्त्र इसके लिए भी निषेध करता है । अगर धोखे से दृष्टि चली जाय तो उनमें भगवद्भाव करो लेकिन उनकी तरफ भगवद्भाव से भी नहीं देखो अन्यथा भ्रष्ट होने के पूर्ण अवसर होते हैं ।

श्रीलक्ष्मण जी इसी मर्यादा से चलते थे । ऋष्यमूक पर्वत पर जब सुग्रीव जी ने राम जी को सीता जी के आभूषण दिखाए तो प्रभु श्रीराम ने लक्ष्मण जी को दिखाकर कहा कि पहचानो क्या ये आभूषण सीता के ही हैं ? तब लक्ष्मण जी ने कहा –

नाहं जानामि केयूरे नाहं जानामि कुण्डले ।

नूपुरेत्वभिजानामि नित्यं पादाभिवन्दनात् ॥ (वाल्मीकि रामायण)

'हे प्रभो! मैं इन बाजूबन्दों को नहीं जानता और न ही इन कुण्डलों को जानता हूँ । हाँ, इन बिछुओं (नूपुरों) को अवश्य पहचानता हूँ, क्योंकि चरण-वंदना करते इन्हें नित्य देखा करता था ।' अर्थात् लक्ष्मण जी ने सीता जी के चरणों के अलावा उन्हें दृष्टि उठाकर नहीं देखा। भ्रष्ट वही साधक होता है जो शास्त्र और गुरु की आज्ञा का उल्लंघन करता है, यदि इनकी आज्ञानुसार व्यवहार हो तो कभी नाश या पतन नहीं हो सकता है । अगर कभी किसी स्त्री के प्रति भूल से नेत्र जाएँ तो तत्काल उनमें भगवती का भाव या माता का भाव करो। ये आद्यशक्ति जगदम्बा की अंश स्वरूपा हैं–**'विद्याः समस्तास्तव देवि भेदाः स्त्रियाः समस्ताः सकला जगत्सु ।'** कोशिश कीजिये उनके मस्तक, नेत्र और केशों पर दृष्टि न जाए, केवल चरणों पर दृष्टि रहे । ज्यादा देर वार्ता मत करो, एकांत में वार्ता मत करो । जहाँ दृष्टि जाए तत्काल नेत्र हटा लो, अगर दर्शन होते ही आपने कामभाव से देख लिया तो आप ब्रह्मचारी नहीं रह सकते या वह साधिका ब्रह्मचारिणी नहीं रह सकती, जिसने पुरुष को कामभाव से देख लिया ।

ब्रह्मचर्य में लाभकारी आहार एवं दिनचर्या

युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु ।
युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा ॥ (गी. ६/१७)

'जो साधक युक्त-आहार और युक्त-विहार करने वाला है, कर्मों में यथायोग्य चेष्टा करने वाला है तथा परिमित शयन और जागरण करता है, ऐसे योगी का 'योग' उसके समस्त दुःखों का नाश कर देता है।'

ब्रह्मचर्य साधने के लिए सर्वप्रथम आवश्यक है – खान-पान का संयम। शास्त्रों में लिखा है - **को रुक्, को रुक्, को रुक् ?** अर्थात् कौन स्वस्थ है तो इसका उत्तर है – **हितभुक्, मितभुक्, ऋतभुक्** । अर्थात् हितभुक् (हितकार भोजन ग्रहण करने वाला), मितभुक् (भूख से कम खाने वाला) और ऋतभुक् (न्याय-नीति से कमाया हुआ खाने वाला)।

श्रुतियों में लिखा है - **'अन्नमयं हि सौम्य मनः'**–अन्न के सूक्ष्मांश से मन का निर्माण होता है । इसलिए **'आहार शुद्धौ सत्व शुद्धिः'** आहार शुद्ध होने से अन्तःकरण शुद्ध होता है अर्थात् सतोगुण की वृद्धि होती है और शुद्ध मन के द्वारा ही ब्रह्मचर्य सम्भव है । इसलिए ब्रह्मचर्य और भोजन में अत्यन्त घनिष्ट सम्बन्ध है । ब्रह्मचर्य के इच्छुक साधक को सादा, सात्विक और अल्पाहारी होना चाहिए, राजसी-तामसी आहार का पूर्णतया त्याग कर देना चाहिए अन्यथा वह वीर्य धारण नहीं कर सकता। भगवान् ने गीता जी में सात्विक-राजसादि आहार का वर्णन किया है –

आयुः सत्त्वबलारोग्यसुखप्रीतिविवर्धनाः ।
रस्याः स्निग्धाः स्थिरा हृद्या आहाराः सात्त्विकप्रियाः ॥ (१७/८)

'रसयुक्त (फल, शक्कर, बताशा व दुग्धादि), चिकने (घी, किसमिस आदि), स्थिर रहने वाले (जिस भोजन का सार शरीर में बहुत काल तक रहे) तथा हृदय को बल देने वाले आहार – ये सात्विक आहार हैं। इनसे आयु, सत्त्वगुण, बल, आरोग्य, सुख और प्रीति की वृद्धि होती है।' **कट्वम्ललवणात्युष्णतीक्ष्णरूक्षविदाहिनः।**

आहारा राजसस्येष्टा दुःखशोकामयप्रदाः॥ (१७/८)

'कड़वे, खट्टे, लवणयुक्त, बहुत गरम, तीखे, रूखे, दाहकारक आहार – ये राजस आहार हैं । ये दुःख, शोक तथा रोगों को उत्पन्न करने वाले हैं ।' अर्थात् ब्रह्मचर्य के लिए बहुत हानिकारक हैं ।

ब्रह्मचर्य में लाभप्रद आहार –

अन्न - जौ, गेहूँ, साठी, मूँग, अरहर, चना आदि । **फल** – (ऋतु के फल) सेब, अमरूद, पपीता, नासपाती, केला, नारियल, सिघाड़ा, अनार, बेल आदि । **शाक** – (ऋतु के अनुसार) घिया (लौकी), परवल, तोरई, मटर, शिमला मिर्च, कद्दू, टिंडा, मूली, खीरा आदि ।

ब्रह्मचर्य के लिए निषिद्ध खाद्य पदार्थ –

लाल मिर्च, गरम मशाला, राजमा, सोयाबीन एवं सोयाबीन बड़ी, मसूर दाल, साबुद उड़द, मशरूम, गाजर, चुकन्दर, मूगफली, काजू, बादाम, अखरोट, गुड़, प्याज, लहसुन, अचार, अत्यधिक उष्ण (गर्म), खट्टे, मीठे, नमकीन एवं तले हुए पदार्थ, पिज्जा, बर्गर, कचौड़ी-समोसा, मालपूआ, गरिष्ठ आहार, कोल्ड ड्रिंक्स एवं नशीले पदार्थ आदि ।

ब्रह्मचर्य-साधना करने वाले को २४ घंटे में ज्यादा-से-ज्यादा दो बार भोजन करना चाहिए और जितनी भूख हो उससे आधा भोजन करना चाहिए, पेट भरकर खाना उचित नहीं है। दिन का भोजन दोपहर १ बजे से पूर्व एवं रात्रि का भोजन ८ बजे से पहले कर लेना चाहिए ।

भोजन पाते समय चिंतन दूषित नहीं होना चाहिए । मध्यान्ह भोजन के बाद १०-१५ मिनिट बायीं करवट लेटें एवं रात्रि भोजन के बाद थोड़ा टहलना आवश्यक है ।

साधक को २४ घंटे में कम से कम ३ से ५ लीटर और गर्मियों में ५ से ७ लीटर पानी पीना चाहिए । पानी बैठकर, मुँह से पात्र लगाकर, चुस्की लेकर, धीरे-धीरे मुँह में घुमाते हुए, घूँट-घूँट करके पीना चाहिए ताकि लार अन्दर जा सके, वह लाभकारी होती है। पानी सामान्य या हल्का गुनगुना पीना चाहिए परन्तु ठंडा (वर्फ डला या फ्रिज आदि का) पानी कदापि नहीं पीना चाहिए। खाना खाने के १ घंटे पहले या भोजन कर लेने के १ घंटे बाद पानी पीना चाहिए, भोजन के साथ नहीं और न ही भोजन करने के तुरंत बाद क्योंकि **'भोजनान्ते विषं वारि'** भोजन के तुरंत बाद पानी पीना विष की तरह है; अगर भोजन के बीच में अति आवश्यकता हो तो बिल्कुल थोड़ा-सा पानी ले सकते हैं। खड़े होकर या लेटकर कभी पानी न पियें ।

ब्रह्मचर्य के लिए उपयोगी दिनचर्या – साधक को ब्रह्ममुहूर्त से पूर्व यानी ४ बजे तक उठ जाना चाहिये क्योंकि चार बजे के बाद ही अधिकांश ब्रह्मचर्य क्षीण होता है, जो ६ बजे तक सोते रहते हैं, वे ब्रह्मचारी कभी नहीं बन सकते; इसलिए रात्रि में जल्दी शयन और प्रातः जल्दी जगने का साधक को अभ्यास डालना चाहिये ।

उठने के बाद साधक को खाली पेट, बिना कुल्ला किये, काकासन या बज्रासन में बैठकर कम से कम १ से २ लीटर तक हल्का गर्म (गुनगुना) जल पीना चाहिए, इसे ऊषापान कहते हैं। यह बहुत ही लाभकारी अमृततुल्य होता है। यदि कब्ज हो तो थोड़ा नमक डालकर पीना चाहिये । ऊषापान के लिए सम्भव हो तो रात्रि में सोते समय ताँबे के पात्र में जल-भरकर ढककर उसे रख दें और प्रातःकाल

उठते ही उसको पियें । फिर कुछ समय थोड़ा टहलें अथवा वज्रासन पर बैठें; तत्पश्चात् दैनिक कृत्य शौच-स्नानादि करें।

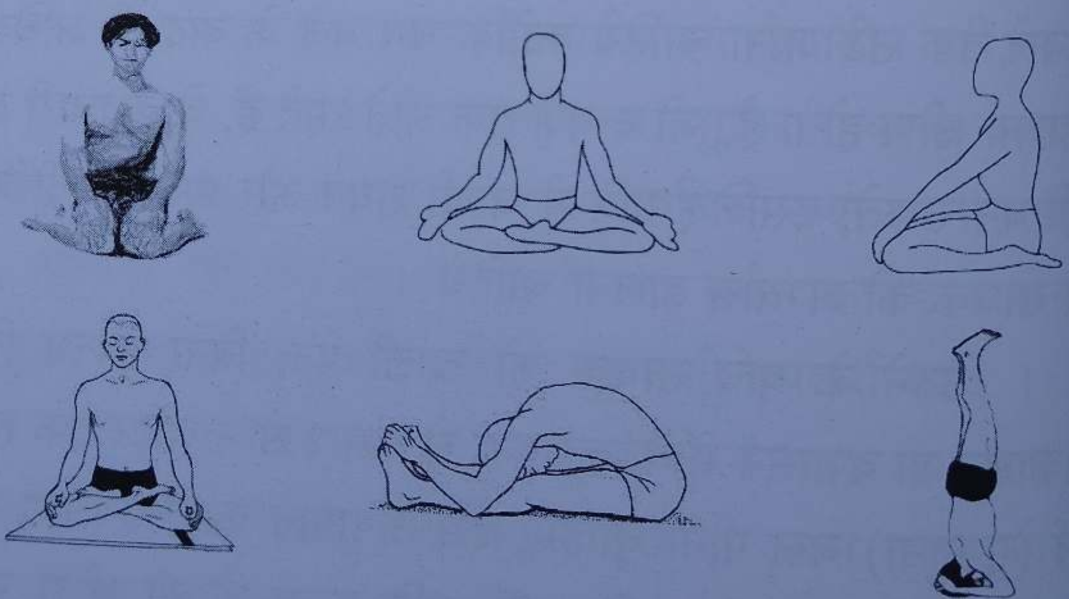
नहाने से पहले नाभि पर जलधार डालें, फिर अच्छे से घर्षण करके नहायें, और ज्यादा गर्म पानी का उपयोग स्नान के लिए न करें, प्रतिदिन २ बार स्नान करें । प्रातःकाल स्नानादि से निवृत्त होकर कुछ व्यायाम-प्राणायाम आदि करें ।

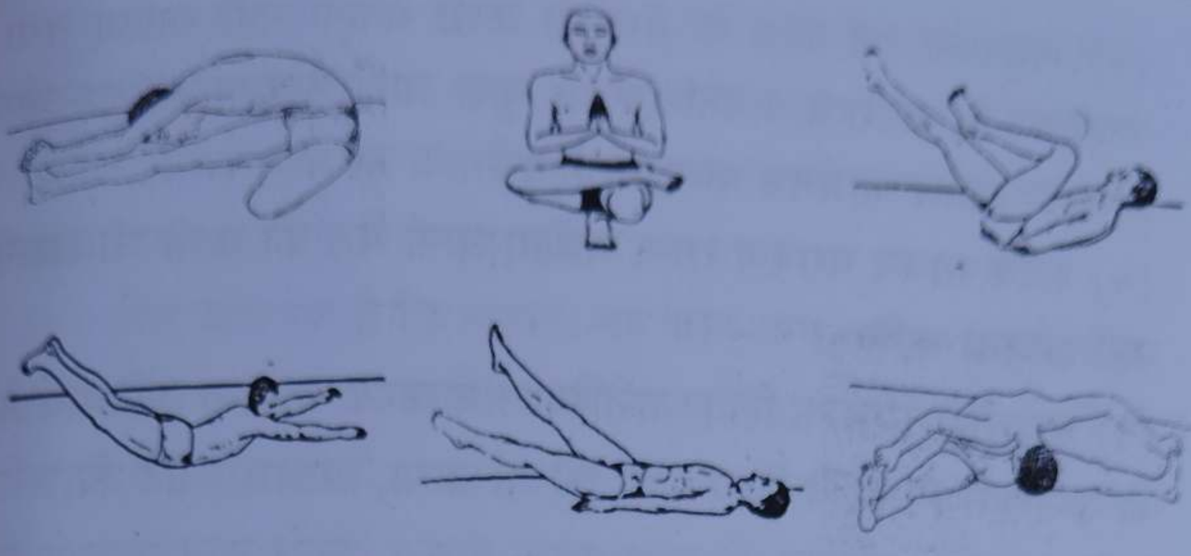
जिसे ब्रह्मचर्य का पालन करना है उसे नियमित व्यायाम करना अर्थात् शरीर को थकाना अत्यन्त ही आवश्यक है ।

ब्रह्मचर्य-संयम में सहायक आसन एवं प्राणायाम –

आसन – १. ब्रह्मचर्यासन, २. सिद्धासन, ३. बज्रासन, ४. पद्मासन, ५. पादपश्चिमोत्तानासन, ६. शीर्षासन, ७. जानुशिरासन, ८. पादांगुष्ठासन, ९. द्विपाद चक्रासन, १०. नाभ्यासन, ११. उत्थितएकैक-पादासन, १२.सम्प्रसारण भू नमनासन।

(क्रमशः आसनों के चित्र)





प्राणायाम – अनुलोम-विलोम, कपालभाति, भस्त्रिका आदि ।

व्यायाम-प्राणायाम के तुरंत बाद लघुशंका अवश्य जाएँ और कम से कम ३० मिनिट तक कुछ खाएँ-पिएँ नहीं ।

औषधि सेवन – आँवला, त्रिफला चूर्ण एवं प्रातःकाल स्नानोपरान्त १ तुलसी की पत्ती पाएँ तथा शाम के समय १ नीम की पत्ती पाएँ, अगर वह पचने लगे तो धीरे-धीरे पाचन के अनुसार उनकी मात्रा में १० पत्तियों तक वृद्धि कर सकते हैं, ये बहुत लाभकारक औषधी है अथवा वीर्य पुष्टता के लिए आयुर्वेदिक चिकित्सकों के परामर्श से कुछ दिनों के लिए औषधी ले लें और सेवन-विधि के अनुसार उसका सेवन करें।

विशेष –

(१) सूर्य नमस्कार एवं मूलबंध लगाना ब्रह्मचर्य में बहुत सहायक है ।

(२) यदि संभव हो सके तो लँगोट (कौपीन) एवं खड़ाऊँ धारण करें।

(३) ब्रह्मचर्य पालन करने वाले साधक को कभी दिन में सोना नहीं चाहिए यदि रात्रि में नींद पूरी नहीं हुई हो तो १ घंटे विश्राम कर लें अन्यथा नहीं; एवं रात्रि में भी लघुशंका से निवृत्त होकर हाथ-पैर धुलकर, यदि सम्भव हो तो बायीं करवट सोना चाहिए ।

(४) लघुशंका एवं शौच के वेग को कभी रोकना नहीं चाहिए तथा लघुशंका के उपरान्त जननेन्द्रिय पर कुछ पानी डालना चाहिए और हाथ-पैर धोकर आचमन करना चाहिए।

(५) सदैव साधन परायण रहना चाहिए यानी मन को कभी भी खाली नहीं छोड़ना चाहिए।

(६) ब्रह्मचर्य संयम के लिए शारीरिक श्रम करना अत्यन्त अनिवार्य है, जो उपासकजन हैं, वे नित्य धाम की परिक्रमा, आश्रम आदि की शरीर से सेवा अवश्य करें।

(७) व्यायाम-प्राणायाम आदि किसी योगाचार्य से समझकर ही करें ।

(८) सबका मूल है - भगवन्नाम जप, इससे शीघ्र अन्तःकरण शुद्ध हो जाता है और ब्रह्मचर्य धारण करने की सामर्थ्य प्राप्त होती है।

(९) अत्यन्त आवश्यकता पड़ने पर ही किसी का स्पर्श करना चाहिए, अन्यथा उपासक किसी का स्पर्श न करे ।

(१०) शरीर से शौचाचार का पूर्ण पालन करना चाहिए यानी शारीरिक पवित्रता पर भी पूर्ण ध्यान देना चाहिए ।

(११) यदि दुग्ध पान करना है तो रात्रि में सोने से १ घण्टे पहले दूध पियें, अगर बहुत आवश्यकता हो तो थोड़ी-सी चीनी मिलायें, अन्यथा नहीं, एवं दूध अधिक गर्म नहीं होना चाहिए।

विचारों का संयम – यह ब्रह्मचर्य का मूल है, कोई व्यायाम-आसन-प्राणायाम कितना भी करता रहे यदि उसके विचारों का संयम नहीं है तो वह ब्रह्मचर्य कभी धारण नहीं कर सकता है । विचारों के संयम के लिए नित्य सत्संग करना एवं उत्तम ग्रंथों अर्थात् सत्शास्त्रों का नित्य स्वाध्याय करना आवश्यक है, क्योंकि उनसे हृदय में उत्तम भावनाओं का उदय होता है और मन में दूषित विचार आने कम हो जाते हैं ।

साधक को बाह्य संसर्ग यानि कुसंग (भोगी पुरुषों का संग, सिनेमा, खेल-तमासे, गंदे दृश्य आदि) से बहुत बचना चाहिए । मोबाइल (स्मार्टफोन) या इन्टरनेट के माध्यम से गंदे कामोत्तेजक भोग-सम्बन्धी दृश्य कभी नहीं देखने चाहिए ।

सार बात यह है कि साधक का खान-पान, पठन-पाठन, संग, चेष्टाएँ आदि सब कुछ सात्त्विक होना चाहिए, तभी अन्तःकरण में सत्त्वगुण की वृद्धि होगी, मन निर्मल होगा और ब्रह्मचर्य धारण करने की योग्यता प्राप्त होगी । यदि अन्तःकरण में रजोगुण-तमोगुण छाया रहेगा तो रोज ब्रह्मचर्य नष्ट होगा और साधक ब्रह्मचर्य संयम कदापि नहीं कर पायेगा। श्रीमद्भागवत में लिखा है –

आगमोऽपः प्रजा देशः कालः कर्म च जन्म च ।

ध्यानं मंत्रोऽथ संस्कारो दशैते गुणहेतवः ॥ (भा. ११/१३/४)

'शास्त्र, जल (खान-पान), प्रजा (संग), स्थान, समय, कर्म, जन्म, ध्यान, मंत्र और संस्कार – ये दस चीजें गुण परिवर्तन का हेतु हैं; ये यदि सात्त्विक हैं तो सत्त्वगुण की, राजस हैं तो रजोगुण की और यदि तामस हैं तो तमोगुण की अन्तःकरण में वृद्धि होती है ।

पवित्र मन के द्वारा ही ब्रह्मचर्य सम्भव

एक मात्र विशुद्ध मन ही मनुष्य को ब्रह्मचारी एवं वीर्य धारण करने के लिए समर्थ बना सकता है और मन को शुद्ध करने के लिए सुयोग्य वैद्य हैं महात्माजन । बिना सत्पुरुषों की संगति के मन-बुद्धि पूर्ण रूप से शुद्ध नहीं हो सकते हैं, इनकी शुद्धि तब मानी जाती है जब इनमें पूर्ण विवेक का प्रादुर्भाव हो जाय और विवेक की प्राप्ति एकमात्र सत्संग से ही होती है **'बिनु सत्संग बिबेक न होई ।'** । अतः साधक को नित्य सत्संग करना चाहिए और सत्संग से प्राप्त विवेक के द्वारा शुद्ध हुआ मन वीर्यरक्षा के लिए दिव्यौषधि है । बाकी अन्य जितने ब्रह्मचर्य-संयम के उपाय हैं, वे अब आनुषंगिक हैं ।

इसलिए जो भी साधक (गृहस्थ या विरक्त) ब्रह्मचर्य धारण करना चाहता है तो उसे मन की शुद्धि पर बहुत ध्यान देना चाहिए, यदि मन अपवित्र है, कुसंस्कारों से युक्त है तो साधक ब्रह्मचारी रह ही नहीं सकता है । अतः ब्रह्मचर्य में सर्वाधिक आवश्यक है अध्यात्मिक ज्ञान के द्वारा चित्त का परिवर्तन करना । हम बाहर से खान-पान आदि सब कुछ ठीक कर लें लेकिन चिन्तन यदि विषयों का बना हुआ है तो बहुत प्रयास करने पर भी हम ब्रह्मचर्य धारण करने में समर्थ नहीं हो पायेंगे, हम हार जायेंगे; ऐसा सैकड़ों प्रयासरत् साधकों का अनुभव है कि प्रयास करने पर भी हम सफल नहीं हो पाते हैं; हरि-गुरु आदि की सौगन्ध खाने पर भी हम सफल नहीं होते, तो इसका प्रधान कारण असत्-चिंतन ही है।

चिंतन में हमारे यह बात दृढ़ता से बैठ गयी है कि इन्द्रियजन्य भोगों में बड़ा सुख है, यही जीवन का परम आनंद है । अब हम कुछ

दिन तक तो किसी पूजनीय की सौगन्ध आदि खाकर के भले ही ब्रह्मचर्य को रोक सकते हैं लेकिन उससे ज्यादा वह नहीं रोका जा सकता है; क्योंकि विषयों के प्रति चित्त की महत्त्वबुद्धि बनी हुयी है । भगवान् ने गीता जी में भी यही बात कही है –

विषया विनिवर्तन्ते निराहारस्य देहिनः ।
रसवर्जं रसोऽप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्तते ॥
यततो ह्यपि कौन्तेय पुरुषस्य विपश्चितः ।
इन्द्रियाणि प्रमाथीनि हरन्ति प्रसभं मनः ॥ (२/५९,६०)

'निराहार रहने वाले अर्थात् इन्द्रियों द्वारा विषयों को ग्रहण न करने वाले पुरुष के विषय तो निवृत्त हो जाते हैं, परन्तु उनमें रहने वाली आसक्ति निवृत्त नहीं होती है और आसक्ति का नाश न होने के कारण ये प्रमथन स्वभाव वाली इन्द्रियाँ साधन परायण विद्वान् पुरुष के मन को भी बलात् हर लेती हैं अर्थात् उसे विषयों में गिरा देती हैं ।'

श्रीध्रुवदास जी महाराज ने भी कहा है –

रस बल छुटै न जौ विषय, सुख नहिं पावै कोइ ।
तन छाँड़े मन गहि रहै, दूनौं दुख तहाँ होइ ॥

यदि चित्त से विषयासक्ति नष्ट नहीं हुई तो बाहर से विषय-सेवन त्याग देने पर भी साधक सुखी नहीं हो सकता ।

इसलिए आवश्यकता है हमें सत्संग के द्वारा चित्त में स्थित विषयासक्ति को नष्ट करने की अर्थात् चित्त का परिवर्तन करने की । भले ही हमारा भोजन सात्त्विक है, हम आसन-व्यायाम-प्राणायाम भी नियम से करते हैं किन्तु हमारा चिन्तन ठीक नहीं है तो हम विषय-संयोग होने पर उससे बच नहीं सकते हैं । हमारे मस्तिष्क में जो यह बात बैठी हुई है कि 'स्त्री-शरीर में सुख है या स्त्री शरीरधारी साधिका

सोचती है कि पुरुष शरीर में सुख है' – जब तक यह बात हमारी बुद्धि से नहीं निकलेगी तब तक हम बलात् इन्द्रियों एवं मन को कब तक रोक सकते हैं । मन से कितने समय तक लड़ सकते हैं, आखिरकार हमें परास्त होना ही पड़ेगा। वही बात आज सबके साथ हो रही है । अगर यह बात हम बुद्धि में बैठा लें कि विषय तो विष से भी ज्यादा विषैले, दुःखदायी, भय एवं अशांतिदायक हैं, तब विषयों से स्वाभाविक अरुचि होना संभव है । श्रीबिहारिनदेव जी महाराज कहते हैं –

सूकौ हाड़ हरखि गहै बिमुख विषै घर बात ।
लोहू अपने गाल को चाटि स्वानि इतरात ॥

'जैसे कुत्ता सूखी हड्डी को चबाता है तो उसकी रगड़ से उसके अपने मसूड़े में से जो खून निकलता है, वह उसको चाटकर प्रसन्न होता है, इतराता है कि मुझे इस हड्डी में से रक्त पीने को मिल रहा है, ऐसे ही विषय सुख है, भोग में स्व जीवनी शक्ति का नाश करके भोगी पुरुष सोचता है कि स्त्री शरीर में सुख है, या स्त्री सोचती है कि पुरुष शरीर में सुख है ।'

श्रीबिहारी दास सुख विषय को ज्यों नख नेंक खुजाइ ।
बिस ब्यौरे सब अंग में पाछे पके पिराइ ॥

भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र जू स्वयं गीता जी में कह रहे हैं –

ये हि संस्पर्शजा भोगा दुःखयोनय एव ते ।
आद्यन्तवन्तः कौन्तेय न तेषु रमते बुधः ॥ (गी. ५/२२)

'जितने इन्द्रिय तथा विषयों के संयोग से उत्पन्न होने वाले भोग हैं, यद्यपि विषयी पुरुषों को वे सुखरूप भासते हैं, किन्तु वे सब दुःखदायी और आदि-अन्तवाले अर्थात् अनित्य हैं। इसलिए हे अर्जुन! बुद्धिमान विवेकी पुरुष उनमें रमण नहीं करते ।'

विषयेन्द्रियसंयोगाद्यत्तदग्रेऽमृतोपमम् ।
परिणामे विषमिव तत्सुखं राजसं स्मृतम् ॥ (गी. १८/३८)

'जो सुख विषय और इन्द्रियों के संयोग से प्राप्त होता है, वह पहले भोगकाल में अमृत के तुल्य प्रतीत होता है, पर परिणाम में वह विष के तुल्य है।'

अतः शास्त्रों के आधार पर अथवा सन्तों के अनुभव के आधार पर यह सुनिश्चित है कि विषयों में लेशमात्र भी सुख नहीं है, सुख तो एकमात्र सुखसिन्धु प्रभु में ही है ।

'जो आनंद सिंधु सुखरासी। सीकर तें त्रैलोक सुपासी ॥'
'एतस्यैवानन्दस्य अन्यानि भूतानि मात्रामुपजीवन्ति ॥'

अगर ऐसी दृढ़ धारणा बन जाए तो काम का जड़मूल से नाश हो सकता है अन्यथा असंभव है क्योंकि हमारा मन ये मान बैठा है कि विषयों में सुख है, इसलिए हम बार-बार विषयों से पराजित हो जाते हैं । अगर ये बात अभी मन में बैठ जाए कि आनंदसिन्धु तो प्रभु हैं, उन्हीं में सुख है तो सारे विषय स्वतः ही सारहीन और विषवत् प्रतीत होने लगेंगे । गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी कह रहे हैं –

जो मोहि राम लागते मीठे ।
तो नवरस षटरस रस अनरस, है जाते सब सीठे ॥

श्रीनारायणस्वामी जी के भी वचन हैं –

ब्रह्मादिक के भोग सुख विष सम लागत ताहि ।
नारायन ब्रज-चन्द्र की लगन लगी है जाहि ॥

श्रीपादप्रबोधानंदसरस्वती जी कह रहे हैं कि यदि श्रीकिशोरीजी के चरणों में उपासक का मन लग जाय तो भगवान् के मोहनी अवतार में भी सामर्थ्य नहीं, जो ऐसे उपासक के मन में क्षोभ पैदा कर सके ।

जैसे नामाचार्य श्रीहरिदास ठाकुर जी की नवीन तरुण अवस्था है, वलिष्ट शरीर है, एकांत में बैठकर भजन में निमग्न हैं, उनसे द्वेष करने वाले रामचंद्र खाँ ने उन्हें भ्रष्ट करने के लिए अद्भुत श्रृंगार से सुसज्जित नवयुवती वेश्या को उनके पास भेजा । वह ३ रात्रि लगातार एकान्त में उनके पास आई लेकिन उनका मन एक बार भी चलायमान नहीं हुआ अर्थात् उसकी ओर आकर्षित नहीं हुआ अपितु महामंत्र के श्रवण से एवं उन महापुरुष के दर्शन के प्रभाव से उस वेश्या का ही चित्त परिवर्तित हो गया और वह वेश्यावृत्ति त्यागकर प्रभु की महान भक्ता बन गयी ।

इसलिए प्रभु की भक्ति में कितना बल है, संसारी लोग जिन विषय-सुखों की प्राप्ति के लिए अनेकानेक प्रयत्न करते हैं किन्तु प्रभु का प्रेमी भक्त उन्हीं विषय-सुखों को विषवत्, वमनवत् अथवा मलवत् छोड़ देता है । गोस्वामी तुलसीदास जी मानस जी में प्रेममूर्त्ति श्रीभरतलालजी के बारे में लिखते हैं –

भूषन बसन भोग सुख भूरी। मन तन बचन तजे तिन तूरी॥
अवध राजु सुर राजु सिहाई। दसरथ धनु सुनि धनदु लजाई॥
तेहिं पुर बसत भरत बिनु रागा। चंचरीक जिमि चंपक बागा॥
रमा बिलासु राम अनुरागी। तजत बमन जिमि जन बड़भागी॥

'श्रीभरतजी ने गहने-कपड़े और अनेकों प्रकार के भोग-सुखों को मन, तन और वचन से तृण तोड़कर यानी प्रतिज्ञा करके त्याग दिया। जिस अयोध्या के राज्य को देवराज इन्द्र सिहाते हैं और जिन दशरथजी की सम्पत्ति को सुनकर कुबेर भी लजा जाते हैं; उसी अयोध्यापुरी में भरतजी अनासक्त होकर इस प्रकार निवास कर रहे हैं, जैसे चम्पा के बाग में भौंरा रहता है ।

अतः गोस्वामी तुलसीदास जी कहते हैं कि श्रीरामचन्द्रजी के प्रेमी बड़भागी पुरुष लक्ष्मी के विलास (भोगैश्वर्य) को वमन की भाँति त्याग देते हैं।'

इसी तरह से श्रीमद्भागवत में भी ऋषभनन्दन श्रीभरतजी के विषय में लिखा है -

यो दुस्त्यजान्दारसुतान् सुहृद्राज्यं हृदिस्पृशः ।
जहौ युवैव मलवदुत्तमश्लोकलालसः ॥ (भा. ५/१४/४३)

'उन्होंने पुण्यकीर्ति भगवान् श्रीकृष्ण को प्राप्त करने की इच्छा से अत्यन्त मनोरम तथा दुस्त्यज (कठिनाई से त्यागने योग्य) स्त्री-पुत्रादि, मित्र और राज्य को युवावस्था में ही विष्ठा के समान त्याग दिया।'

सारे विषय-सुख श्रीरघुनाथदास जी के घर में थे । घरवालों ने देखा कि ये तो प्रभु की भक्ति की तरफ आकर्षित हो रहा है तो उन्होंने उनका विवाह एक अत्यन्त सुन्दर नवयुवती कन्या से करवा दिया, लेकिन रघुनाथदास जी ने उस कन्या की तरफ देखा भी नही; क्योंकि उनका चित्त श्यामसुन्दर की तरफ मचल पड़ा था । सारे भोग उनको बड़े कष्टदायी लगते थे और एक दिन वे उन सब भोगों को छोड़कर घर से भजन के लिए भाग निकले ।

अब विचार करो, जिन भोगों की प्राप्ति के लिए लोग जाने क्या-क्या नहीं करते हैं, भक्त को सहज में प्राप्त होने पर भी वह उन्हें स्वीकार नहीं करता है।

इसलिए व्यायाम-प्राणायाम और सात्त्विक आहार ब्रह्मचर्य धारण करने में सहायक जरूर है लेकिन मुख्य बात है चिन्तन बदलना; बाकी ये सब गौड़ बातें हैं । यदि हमारा चिंतन विषयों का बना रहा तो हम ब्रह्मचर्य को रोक पाने में समर्थ नही हो सकते हैं, अतः चिंतन

बदलना बहुत जरूरी है और उसके बदलने के लिए नित्य सत्संग, शास्त्र स्वाध्याय और नामजप तीनों अति आवश्यक हैं । इससे चिंतन बदलेगा और व्यायाम-प्राणायाम आदि से शरीर की नस-नाड़ियाँ मजबूत होंगी। शुद्ध आहार से मन चलायमान नहीं होगा । आप तीनों को करें, आहार ठीक कीजिये, भजन-साधन से चिंतन ठीक कीजिये और दृढ़ निश्चय के द्वारा उन अशुभ क्रियाओं को दूर कीजिये, जो अशुभ क्रियाएँ आप कर रहे हैं तो आप सुधर जायेंगे नहीं तो कुछ दिनों बाद ऐसा होने लगेगा कि आपकी विचार शक्ति लुप्त हो जायेगी । आपके अन्दर बिना किसी कारण के भय और घबराहट बनी रहेगी यानी सैकड़ों तरह की परेशानियाँ आ जायेंगी ।

जब तक चिंतन अपवित्र है तब तक ब्रह्मचर्य धारण करना बड़ा कठिन है । ब्रह्मचर्य संयम के लिए आवश्यक मुख्य बात है कि हमारा चिंतन बदले ।

ब्रह्मचर्य सम्बन्धी साधकों की कुछ जिज्ञासाएँ

प्रश्न - मेरा मन विषय-भोगों की ओर जाता है तो मैं क्या करूँ ?

समाधान – मन तो विषयों की ओर जाएगा ही क्योंकि जब तक पूर्ण रूप से अन्तःकरण पवित्र नहीं होता है, तब तक मन भोगों की तरफ जाता ही है, इसलिए इसमें विचलित होने की बात नहीं है । जब आपका मन विषयों के प्रति जाए तो उस समय आपको सावधानी यह रखनी है कि उसके कथनानुसार अर्थात् मन की प्रेरणा के अनुसार आपको कोई असत् चेष्टा नहीं करनी है क्योंकि मन चाहे जितनी उड़ान भरे किन्तु बिना तन (शरीर) के यह कर कुछ नहीं सकता। इसलिए मन जब कामादि दोषों से युक्त हो तो उस समय गंदी-क्रिया करने से बचना है तथा एकांत सेवन भी उस समय नहीं करना चाहिए। अच्छे लोगों के समूह में रहना चाहिए क्योंकि एकांत में मन हावी हो सकता है अर्थात् असत् चेष्टा करा सकता है। पूर्वकृत कर्मों का मन स्मरण कराता है और उस सुख की तृष्णा प्रकट करके विषयों को भोगने के लिए विवश करता है । साधक को चाहिए उस समय उदासीन होकर के उच्चस्वर से नाम-संकीर्तन करे, यदि यह भी संभव न हो तो इतना देखता रहे कि मन के अनुसार क्रिया न होने पाए । वह चिंतन थोड़ी देर के लिए आया है, यह बराबर स्थिति नहीं रहती है । जैसे भजन की कभी-कभी ऐसी रसमयी स्थिति आती है कि लगता है काम बन गया लेकिन वह बराबर नहीं रहती है । वह फिर हट जाती है। ऐसे ही जब मन गंदा भाव प्रकट करके विचलित करता है तो उस समय सबसे पहले साधक को धैर्य रखना चाहिए कि ये वृत्ति स्थायी नहीं है, थोड़ी देर के लिए आई है और कुछ समय पश्चात् स्वतः चली जायेगी।

उस समय घबड़ाने की जरूरत नहीं है। एकदम तन्मय होने की जरूरत नहीं है कि हाय ! हमारा मन अब ऐसे दोषों से युक्त हो गया है। अब हमारा क्या होगा ? कुछ नहीं, कभी गरम हवा चलती है तो कभी ठण्डी। ऐसे ही कामादि दोष मन में संस्कारवश, संगवश या स्वभाववश आ जाते हैं। कहीं न कहीं कोई त्रुटि या प्रमाद होता है, तभी ऐसी वृत्ति आती है लेकिन आ गयी तो चली भी जाएगी, उसके प्रति बहुत महत्त्व बुद्धि न रखें । अगर उसके प्रति तन्मयता करोगे तो क्लेश का अनुभव होगा ।

इसलिए इतनी सावधानी जरूरी है कि न उसके अनुसार कोई क्रिया हो, न ही उसको महत्त्व देना है और भयभीत होने की भी इसलिए जरूरत नहीं क्योंकि मन में इतनी सामर्थ्य नहीं कि वह क्रिया के बिना हमें नष्ट कर दे । क्रिया न होने पाए इसके लिए साधकों के बीच में रहे। अगर क्रिया न बनी तो मन धीरे-धीरे अमना होने लगता है । जिस भाव के लिए मन प्रेरित करे, उसको वह भाव न मिले तो धीरे-धीरे मन का मनपन नष्ट होने लगता है । भोगों का संकल्प करना ही मन का जीवित रहना है और भोगों से निःसंकल्पित हो जाना ही मन का मर जाना है ।

जब साधक के मन में भोगों का संकल्प बने तो वह उसको पूरा न होने दे, थोड़ी जलन तो उसको सहनी पड़ेगी; इस वेग को सहना ही वास्तविक तपस्या है । जल पीकर रहना, वायु पीकर रहना, अग्नि में तपना, ये सब बाह्य साधन हैं, इनका कोई विशेष महत्त्व नहीं है । वास्तविक तपस्या तो यह है कि जब हमारा मन प्रतिकूल भाव का चिंतन करके जलाता है, उसको साधक सहे । उस समय साधक को विचलित नहीं होना चाहिए बल्कि प्रभु के चिंतन में मग्न होकर धैर्य पूर्वक उस जलन को सह जाना चाहिए; जो सह जाता है, वही महात्मा

है और वही इस महारस का अनुभव कर सकता है । बिल्कुल विचलित होने की जरूरत नहीं है, सबके हृदय में ऐसे भाव आते हैं । श्रीनारदजी ने भक्तिसूत्र में लिखा है कि जो तरंग की तरह गंदे भाव हृदय में उदय हो रहे हैं, साधक उनका चिंतन करके वैसी क्रिया न करे तो वह जो तरंग उठ रही है, वह नष्ट हो जायेगी और यदि आपने कहीं उसके अनुसार क्रिया कर ली तो वही तरंग समुद्र बन जायेगी फिर पार होना बड़ा कठिन है, समुद्र बन गयी तो डूबना ही पड़ेगा।

इसलिए साधक के मन में जहाँ कामादि दोषों की वृत्ति आये तो वह घबड़ाये नहीं, क्योंकि जब शत्रु सामने से आक्रमण कर रहा हो तो जो घबड़ा गया, वह योद्धा किस बात का ? अतः सबसे पहली बात साधक के हृदय में भय नहीं होना चाहिए । काम आया ठीक है, चला जाएगा। उसके प्रति महत्त्व बुद्धि नहीं देना है, कुछ समय पश्चात् वह भाव नष्ट हो जाएगा यानी चला जाएगा, वह हृदय में रुकने वाला भाव नहीं है क्योंकि सब आगन्तुक भाव हैं – **'आगमापायिनोऽनित्याः'** कितना भी बड़ा वेग आए कुछ समय धैर्य पूर्वक अपने को बचाकर के रखो, वह निकल जाएगा। यदि आपने उसके अनुसार क्रिया नहीं होने दी तो धीरे-धीरे ऐसी स्थिति आ जायेगी कि उत्तरोत्तर क्षीण होते-होते, ये भाव आना ही बंद हो जायेंगे ।

साधक को सैकड़ों बार गिरने पर भी निरुत्साहित नहीं होना है। प्रायः अधिकांश साधक उत्साहहीन हो जाते हैं और आत्महत्या जैसा जघन्य पाप करने की सोचने लगते हैं जबकि यह बिल्कुल गलत है क्योंकि घबड़ाने की जरूरत नहीं है, विषयों से बार-बार परास्त होने के बाद भी फिर से इस संकल्प को लेकर उठो कि अबकी बार तो इन विषयों को परास्त करके ही रहूँगा और देखना एक दिन ऐसा आयेगा

कि तुम निश्चित इन पर विजय प्राप्त कर लोगे क्योंकि भगवान् के तुम अंश हो ।

प्र०-बिना क्रिया के वीर्य स्खलित हो जाता है तो क्या करें ?

समाधान – अशुद्ध भोजन, कुसंग, गलत चिंतन, गलत आचरण आदि के कारण साधक अपने ब्रह्मचर्य को नहीं सँभाल पाता है । कई ऐसे कारण होते हैं, जिनसे साधक स्वप्नदोष से युक्त हो जाता है । जिस साधक ने पहले कभी किसी भी तरह से धातु को नष्ट किया है तो वीर्य का स्वभाव बन जाता है स्खलित होने का। अब जननेन्द्रिय का अभ्यास बन गया धातु क्षीण करने का, इसलिए अब वह चेष्टा न भी करे तो भी धातु अपने आप क्षीण हो जायेगी क्योंकि अभ्यास बन गया है । स्वतः वीर्य स्खलन का । एक कारण अनुचित आहार भी है; जब कोई ब्रह्मचर्य में निषिद्ध आहार का सेवन कर लेता है तो उससे भी धातु का क्षरण हो जाता है अथवा गलत चिंतन भी धातु क्षरण में एक हेतु है । जैसे स्वप्न में गलत चिंतन हुआ तो स्वप्नदोष हो जाता है।

यदि साधक स्वप्नदोष से बचना चाहता है तो प्रभु की शरणागति से युक्त होकर के वह निरन्तर नामजप करे, सत्शास्त्रों का स्वाध्याय करे, सात्त्विक भोजन पाये और खूब शरीर से श्रम करे यानी शरीर को थकाए। शरीर को थकाना बहुत जरूरी है । यदि साधक नित्य प्रातःकाल उठकर के कम से कम १ घंटा व्यायाम करे तो उसको अनुभव होगा कि हमारा धातु क्षरण होना कम हुआ है, वीर्यपात में अन्तराय होता चला जाएगा ।

यदि कोई स्वयं दिन में कई बार हस्त-मैथुन के द्वारा वीर्य क्षरण करे और फिर इसके उपाय ढूँढ़े तो फिर क्या उपाय रह गया ? इसलिए पहले इस गंदी क्रिया को रोकें फिर आयुर्वेदिक किसी वैद्य से धातु

पुष्टता की औषधी लें, व्यायाम, भोजन और संग में सुधार करें तथा चिंतन सुधारें । अगर विचार शुद्ध नहीं हुए तो बात नहीं बनेगी ।

प्र०-हम ब्रह्मचर्य का पालन क्यों नहीं कर पाते हैं ।

समाधान – जब तक सच्चिदानंद सुख का आस्वादन नहीं मिलता तब तक बिषय-रस नहीं छूटता है, जबकि विषयों में कोई सुख नहीं है, अगर होता तो जिस स्त्री को आप सुन्दर देख रहे हो, उसी का पति किसी और स्त्री की तरफ देख रहा है, जिस पुरुष को वह सुन्दर देख रही है, उसकी पत्नी किसी और पुरुष को देख रही है । महाराज भर्तृहरि जी को इसी बात से तो वैराग्य हो गया कि मुझ चक्रवर्ती सम्राट की अर्धांगिनी एक अश्वपाल (घोड़े की सेवा करने वाले) में आसक्त हो गयी और वह अश्वपाल पिंगला रानी का संयोग प्राप्त करके भी उससे तृप्त न होकर वैश्या से संपर्क रखता है तो बोले धिक्कार है इस झूठे संसार को और उन्होंने वैराग्य धारण कर लिया ।

चूँकि वहाँ सुख हो तब तो मिले, सुख कहीं है ही नहीं । केवल सुख का एक भ्रम है । जैसे मूर्ख कुत्ता सूखी हड्डी को लेकर भागता है और सोचता है कि इसमें बड़ा सुख है, और जब वह सूखी हड्डी को चबाता है तो उसके गलफड़ों से खून निकलता है, उसे चाटकर उसको एक सुख की अनुभूति होती है जबकि सुख है नहीं लेकिन मूर्खता वश वह ऐसा समझ रहा है, ऐसे ही हम अपनी एकाग्रता जहाँ आरोपित कर देते हैं, वहीं हमें सुख मिलने लगता है जबकि वहाँ सुख है नहीं, भ्रम से सुख का अनुभव हो रहा है । ऐसे ही हम भ्रम से अनुभव कर रहे हैं कि शरीर में सुख होगा, अगर पुरुष या स्त्री शरीर में सुख होता तो कोई तो ऐसा बोलता । इतिहास साक्षी है, भागवतजी में कई ऐसे प्रसंग हैं। महाराज ययाति ने अपने पुत्र की अवस्था लेकर विषयों का भोग किया किन्तु अंतिम में वे क्या कह रहे हैं –

यत् पृथिव्यां व्रीहियवं हिरण्यं पशवः स्त्रियः ।
न दुह्यन्ति मनःप्रीतिं पुंसः कामहतस्य ते ॥
न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति ।
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्धते ॥ (भा. ९/१९/१३,१४)

'पृथ्वी पर जितना धान्य, सोना, पशु और स्त्रियाँ हैं, वे सब कामनाओं से जर्जरित एक मनुष्य के मन को संतुष्ट नहीं कर सकती हैं क्योंकि भोग वासना विषयों के उपभोग से कभी शान्त नहीं होती है । जैसे प्रज्वलित अग्नि में घी डालने से अग्नि शान्त होने के बजाय और बढ़ जाती है, वैसे ही विषयसेवन से भोग वासना और बढ़ जाती है ।'

महाराज पुरुरवा ने स्वर्ग की अप्सरा उर्वषी का भोग किया किन्तु जब उनको वैराग्य हुआ, तब वह क्या कह रहे हैं । कहीं भी सुख नहीं, ये जो सुख बुद्धि है, यही हमें फँसाती है और इस बुद्धि को ठीक प्रभु ही करते हैं –

तेषां सतत युक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम् ।
ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते ॥ (गी. १०/१०)

जो प्रभु का सतत् भजन करता है, तो उसकी बुद्धि का प्रभु अपने से योग करा देते हैं, अभी हमारी बुद्धि प्रभु वियोगिनी है, संसार से योग किये हुए है इसलिए संसार में सुख लग रहा है जबकि है नहीं संसार में सुख । यदि किसी से इमानदारी से पूछ लिया जाए तो वह यही कहेगा। जो भजन करता है या विवेकी है उसकी बात कह रहे हैं, नहीं तो फिर नाली का कीड़ा तो नाली में ही सुख मानता है, उसको कहा जाए कि अमृत का भी एक कुण्ड है तो वह उसका भी तिरस्कार कर देगा, क्योंकि वह क्या जाने अमृत का स्वाद –

'विष का कीड़ा विष ही खाय । मिश्री सूँघत ही मर जाय ॥'

अतः सच्चिदानंद प्रभु के नाम रूप लीला का क्या सुख है, वह बिषयी जीव क्या जाने, अगर थोड़ा-सा भी भजन करेगा तो उसको पश्चाताप होगा, क्लेश होगा, अशांति होगी कि मैंने ऐसा क्यों किया । जो सत्संग करते हुए, आये हुए वेग और आकर्षण को यदि सह जाए और संयोग न बनने दे तो कुछ ही वर्षों में वह इन्द्रियजयी हो जाएगा। कुछ ही दिनों में उसके अन्दर ऐसा धैर्य आ जाएगा, जैसे बड़ी मेहनत से आपने एक लाख रुपये जमा किये, अब कोई उनको चुराना चाहे तो क्या आप दे दोगो ऐसे ही । इसी प्रकार से आप जल-जलकर १० वर्ष से ब्रह्मचर्य रहे और अब कोई आकर के आपको ब्रह्मचर्य से पतित करना चाहे तो आपके मन में आग लग जायेगी कि अरे, मैं कैसे ऐसा कर सकता हूँ । पता है कितना जलना पड़ता है, ये वही समझ सकता है ,जो साधक इस मार्ग में चलता है ।

प्रकृति का आकर्षण सबके हृदय में होता है, इसी आकर्षण को मिटाने के लिए ही साधना की जाती है, भगवान् या भगवत्-स्वरूप आचार्यजनों को छोड़कर, शेष जितने संत हुए हैं, उसी आसक्ति को मिटाते हुए वहाँ पहुँचे हैं । कोई ऐसा नहीं कि जो जन्म से अनासक्त हो, जन्म से अनासक्त तो वही होता है जो भगवत्-स्वरूप को प्राप्त हो गया है, अब कारक पुरुष के रूप में अवतार लिया है कार्य करने के लिए, इसीलिये वह अनासक्त है । बकाया प्रत्येक साधक इसी आसक्ति से ही आगे बढ़ता है, कोई ऐसा नहीं है कि जिसके हृदय में काम बेदना न हो? पर इसी आसक्ति को मिटा देना ही हमारी साधना है । भगवान् सामने खड़े हैं पर अर्जुन से यह नहीं कह रहे हैं कि आज से तुम्हारे अन्दर काम-क्रोधादि विकार नहीं आयेंगे, ये वेग आयेंगे पर तुम्हें इनको सहना है, प्रभु अर्जुन को आदेश कर रहे हैं –

मात्रास्पर्शास्तु कौन्तेय शीतोष्णसुखदुःखदाः ।
आगमापायिनोऽनित्यास्तांस्तितिक्षस्व भारत ॥ (गी. २/१४)

शीतोष्ण का तात्पर्य होता है - अनुकूलता एवं प्रतिकूलता । इसी में सारे द्वन्द्व आ गए । **'आगमापायिनोऽनित्याः'** ये सब द्वन्द्व आने-जाने वाले नाशवान हैं **'तांस्तितिक्षस्व भारत'** तू इनको सह अर्थात् भगवान् की भक्ति करते हुए, हमें यह विकार सहने होंगे क्योंकि भगवान् ऐसा चाहते हैं कि हम इनको सहें । इनको सहने से हम प्रेम-रस सहने की योग्यता प्राप्त कर लेंगे, जिसने काम-क्रोधादि के वेग को नहीं सहा। वह परमपद का अधिकारी नहीं हो सकता है ।

यं हि न व्यथयन्त्येते पुरुषं पुरुषर्षभ ।
समदुःखसुखं धीरं सोऽमृतत्वाय कल्पते ॥ (गी. २/१५)

सुख-दुःख, हर्ष-शोक या काम-क्रोध आदि के जो वेग हैं, इनको जो सह जाता है, इनसे व्यथित नहीं होता है, वह परम पद का अधिकारी हो जाता है । श्री सेवक जी महाराज कहते हैं – **'सहत सहत बाढ़ै भगति।'** सहने से भक्ति की वृद्धि होती है।

(पूज्य महाराज श्री अपना अनुभव बताते हुए कहते हैं कि जब वह अपनी तरुणावस्था में विरक्त होकर गंगा किनारे भ्रमण कर रहे थे तो एक शराबी ने उनको अपने पास बुलाकर उनसे कहा कि हमारे साथ चलो और वह उन्हें एक मंदिर के बाहर ले जाकर श्रीविग्रह को दिखाकर कहने लगा कि देखो इसे, महाराज जी बोले – हाँ, देख रहे हैं, फिर वह लड़खड़ाते हुए उसने कहने लगा कि जानते हो यह मूर्ति क्यों पुज रही है, महाराजश्री बोले - प्रभु की मूर्ति है, इसलिए पुज रही है । वह बोला – नहीं, सिर्फ इतना ही कारण नहीं है, देखो, ये मूर्ती भी संगमरमर की है और फिर नीचे फर्श दिखाकर बोला कि इस फर्श में भी संगमरमर का ही पत्थर लगा हुआ है लेकिन जिस संगमरमर की

मूर्ति बनी है, उसको तिल-तिल काटा गया लेकिन ये टूटा नहीं, सब सहता रहा तो ये मूर्ती बनकर के पुज रहा है और ये कमजोर संगमरमर पैरों के नीचे रौंदा जा रहा है । यानी सार बात उसने महाराज जी से यह कही कि भगवद्-मार्ग में चले हो तो कमजोर मत बनना, चाहे जैसी स्थिति आये सब सहना तो इस मूर्ति की तरह जगत्पूज्य बन जाओगे।)

अतः जो साधक विविध प्रकार के वेगों को, प्रतिकूलताओं को सह जाता है, वही महात्मा एवं जगत्पूज्य हो जाता है । इसलिए साधक को चाहिए कि काम, क्रोध, लोभ आदि के वेग आयें तो घबड़ाये नहीं और उनके अनुसार चेष्टा भी नहीं करे, उनको सह जाए तो सहते-सहते एक दिन ये नष्ट हो जाते हैं । किन्तु जो इन वेगों को न सहकर और उनके अनुसार चेष्टा कर बैठता है कि इस भोग को भोग लें तो शान्ति मिल जायेगी तो भोगने से कभी शान्ति नहीं मिलती है अपितु तृष्णा और काम और अधिक बढ़ जाता है –

बुझै न काम अगिनि 'तुलसी' कहुँ बिषय-भोग बहु घी ते ॥

श्रीप्रह्लादजी श्रीमद्भागवत में कह रहे हैं कि –

यन्मैथुनादिगृहमेधिसुखं हि तुच्छं कण्डूयनेन करयोरिव दुःखदुःखम् ।
तृप्यन्ति नेह कृपणा बहुदुःखभाजः कण्डूतिवन्मनसिजं विषहेत धीरः ॥

'लोगों को मैथुन आदि का जो सुख मिलता है, वह अत्यन्त तुच्छ एवं दुःखरूप ही है, जिस प्रकार कोई दोनों हाथों से खुजली को खुजलाता है तो तत्काल उसे थोड़ा-सा सुख मिलता है, परंतु बाद में वह खुजली ठीक होने की बजाय और पक जाती है तथा उसमें बहुत कष्ट होता है । ऐसे ही विषयों का सुख परिणाम में दुखरूप ही है फिर ही ये भूले हुए अज्ञानी मनुष्य बहुत दुःख भोगने पर भी इन विषयों से अघाते नहीं किन्तु इसके विपरीत । धीर पुरुष खुजलाहट के समान

काम के वेग को सहन कर लेते हैं और सहने से ही उसका नाश हो जाता है ।

यही बात श्रीरूपगोस्वामी जी भी उपदेशामृत में कह रहे हैं –

वाचो वेगं मनसः क्रोधवेगं जिह्वावेगं उदरोपस्थ वेगम् ।
एतान् वेगान् यो विषहेत धीरः सर्वामपीमां पृथिवीं स शिष्यात् ॥

'जो धीर पुरुष - वाणी के वेग को, मन के वेग को, क्रोध के वेग को, जिह्वा के वेग, उदर एवं जननेन्द्रिय के वेग को सहन कर लेता है तो ऐसा जितेन्द्रिय व जितात्मा पुरुष सारी पृथ्वी पर विजय प्राप्त कर लेता है अर्थात् वह जगद्गुरु कहलाने का अधिकारी बन जाता है।'

इसका भाव यह है कि जब तक साधक इन वेगों को नहीं सहेगा, तब तक वह परमार्थ की उँचाई पर नहीं पहुँच सकता है।

इन वेगों को सहन करने के उपाय –

वाणी का वेग – यदि वाणी में वाचालता आ रही है तो मौन के द्वारा वाणी के वेग को रोक लेना चाहिए और यदि यह सम्भव नहीं हो पा रहा हो तो तुरंत प्रियालाल के यश का गान करने लग जाएँ तो उस वेग का सदुपयोग हो जाएगा ।

मन का वेग – मन जिस भी विषय, वस्तु, व्यक्ति या पदार्थ में जा रहा है, या तो उसको वहाँ से हटाकर प्रभु में लगाओ, नहीं तो जहाँ मन जा रहा, वहीं प्रभु की भावना करो अर्थात् ये व्यक्ति-वस्तु-पदार्थ आदि सब कुछ प्रभु ही हैं–**'चिदचिल्लक्षणं सर्वं राधाकृष्णमयं जगत् ।'**

क्रोध का वेग – जब कोई प्रतिकूलता हमारे सामने उपस्थित होती है, तब क्रोध आता है और क्रोध करने से साधक की बहुत बड़ी हानि हो जाती है, क्रोध आने पर कर्तव्य-अकर्तव्य का विचार नष्ट हो जाता है, क्रोध के वेग को तभी सहा जा सकता है, जब साधक की

भजन के प्रति महत्त्व बुद्धि होगी कि अगर हमने क्रोध किया तो हमारा भजन नष्ट हो जाएगा । भजन रूपी धन को बचाने के लिए क्रोध के वेग को सहना पड़ेगा । अगर जीवन में कोई प्रतिकूल परिस्थिति आ रही है तो वह भगवत्-कृपा के द्वारा प्रेरित होकर हमें पवित्र करने के लिए आ रही है । कोई निंदा या अपमान कर रहा है तो ऐसा भाव करें कि प्रभु की इच्छा से यह हमें पवित्र करके प्रभु का प्रेम प्रदान करेगा, फिर हमें क्रोध नहीं आयेगा ।

जिह्वा का वेग – अच्छे-अच्छे स्वादिष्ट पदार्थ पाने के लिए हमारी रसनेन्द्रिय में वेग आता है, आज हमको ये पाना है तो जिस विषयरस की जिह्वा में चाह हो उसको वह पवाया ही न जाय । अगर संयोगवशात् वह पदार्थ प्राप्त भी हो जाए तो प्रभु को भोग लगाकर उसको बाँट दो, थोड़ा किनका रूप से पा लो तो इससे जिह्वा में जिस विषय का राग पैदा हुआ, वह नष्ट हो जायेगा । श्रीदत्तात्रेय जी महाराज ने कहा है –

तावज्जितेन्द्रियो न स्याद्विजितान्येन्द्रियः पुमान् ।
न जयेद् रसनं यावज्जितं सर्वं जिते रसे ॥ (भा. ११/८/२१)

'समस्त इन्द्रियों पर विजय प्राप्त कर लेने पर भी जो लोग रसना पर विजय नहीं प्राप्त कर सके, उन्हें जितेन्द्रिय नहीं कहा जा सकता है ।'

उदर का वेग – उदर के वेग को रोकने के लिए साधक में भूख सहने की सामर्थ्य होनी चाहिए क्योंकि जीवन में कभी-कभी ऐसी स्थितियाँ भी आती हैं कि जब खाने को कुछ नहीं मिलता है, उपवास भी करना पड़ता है, ऐसा नहीं कि भूख लगी तो कहीं भी पाने लग गए, साधक में खान-पान सम्बन्धी यह विवेक होना चाहिए ।

उपस्थेन्द्रिय का वेग – जननेन्द्रिय पर विशेष शासन करने की आवश्यकता है । यदि साधक समस्त अनर्थों को सर्वथा के लिए नष्ट

करना चाहता है तो ब्रह्मचर्य अत्यावश्यक है । अगर साधक ब्रह्मचर्य नहीं धारण करेगा तो उसके हृदय में विषय लोलुपता बढ़ती चली जायेगी और वह विषय लोलुपता प्रियालाल के प्रेमरस में बाधक होती है । जैसे-जैसे साधक विषयस्वाद में आगे बढ़ेगा, वैसे-वैसे प्रियालाल की प्राप्ति की भावना नष्ट होती चली जायेगी । गीता जी में प्रभु ने कहा है कि जो धन-सम्पत्ती या भोगासक्त है, उसके हृदय में परमात्म प्राप्ति का निश्चय हो ही नहीं सकता है –

भोगैश्वर्यप्रसक्तानां तयापहृतचेतसाम् ।
व्यवसायात्मिका बुद्धिः समाधौ न विधीयते ॥ (२/४४)

अतः ये वेग सहने ही पढ़ेंगे, चाहे इस जन्म में सहो, चाहे हजार जन्मों में, इनको सहे बिना अनर्थ-निवृत्ति नहीं होगी और साधक आगे नहीं बढ़ पायेगा –

शक्नोतीहैव यः सोढुं प्राक्शरीरविमोक्षणात् ।
कामक्रोधोद्भवं वेगं स युक्तः स सुखी नरः ॥ (गी. ५/२३)

'मृत्यु से पूर्व ही अर्थात् शरीर का नाश होने से पहले ही जो काम-क्रोध से उत्पन्न होने वाले वेगों को सहने में समर्थ हो जाता है, वही योगी है और वही सुखी है ।' जो साधक सहने में आनाकानी करेगा कि हमसे भजन नहीं होता है, हमसे ये वेग नहीं सहे जाते, हमसे प्रतिकूलता सही नहीं जाती, तो फिर उसे परमार्थ की प्राप्ति कैसे होगी ? वह तो फिर इस परमार्थ पर चलने लायक ही नहीं हैं । जो बलहीन पुरुष है, वह भगवत्प्राप्ति के योग्य नहीं रहता, ऐसा श्रुतियों में कहा है कि **'नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः'** जिसके हृदय में ये भाव हो कि हम हर वेग को सहेंगे, हर कष्ट को सहेंगे, हर प्रतिकूल व्यवहार को सहेंगे तो वही सच्चा परमार्थ-पथ का पथिक है और उसे इसी जन्म में प्रभु की प्राप्ति हो जायेगी ।

प्र०-महाराजश्री, हम सब साधकों की तरफ से एक प्रश्न है कि कोई भी ब्रह्मचर्य नाश की क्रिया न करने पर भी कुछ दिनों में ब्रह्मचर्य स्वतः क्षीण (स्वप्नदोष) हो जाता है, फिर हम बहुत चिन्तित होते हैं तो ये क्यों होता है, इससे बचने का उपाय क्या है और स्वप्नदोष होने पर भी क्या हम ब्रह्मचारी हैं ?

समाधान – हमने बाल्यावस्था में जो परमहंस स्थिति को प्राप्त महापुरुष हैं, उनसे प्रश्न किया था कि महाराज जी कोई भी काम चेष्टा न करने पर भी उपासक के शरीर से जो वीर्यपात होता है तो क्या उसका ब्रह्मचर्य क्षीण माना जाएगा और यदि क्षीण माना जाएगा तो वह क्यों निकलता है, जब उसकी कोई क्रिया नहीं है और उसे कैसे रोका जा सकता है ? तो उस समय उन्होंने साधारण शब्दों में बताया था कि वीर्य दो तरह से निकलता है, एक तो जो घातक है, वह उसी के शरीर से निकलेगा, जिसने पहले कभी हस्तमैथुन किया है अर्थात् कुसंग के कारण गंदी क्रियाएँ करके बालकावस्था से ही वीर्य को नष्ट किया है । हस्तमैथुन या अन्य गंदी चेष्टा करने वाला कुछ वर्षों तक यह नहीं जान पाता है कि इस क्रिया के द्वारा मेरी हानि हो रही है, क्योंकि जीवनी-शक्ति भगवान् अपनी ओर से देते हैं कोई बिल्कुल न खाए और हस्तमैथुन करे तो भी कुछ समय तक उसको समझ में नहीं आयेगा, कुछ समय के बाद जब उसकी स्थायी जीवनी शक्ति से क्षीण होना प्रारंभ हो जाएगा, तब उसके जीवन में वीर्य-हानि से होने वाले लक्षण उत्पन्न होने लगते हैं, अब यदि वह किसी अच्छे संग के प्रभाव से हस्तमैथुन करना बंद कर देता है, तब भी उसका कुछ समय तक वीर्यपात (स्वप्नदोष) होगा; क्योंकि उसका अभ्यास बन गया है । दूसरी तरह का वीर्यपात वह है कि जब आप ठीक दिनचर्या से चल रहे हैं, कोई गंदी क्रिया नहीं करते हैं और न ही पहले कभी की अर्थात् जिसने

कभी हस्तमैथुन आदि के द्वारा वीर्यपात किया ही नहीं तो उसका असली वीर्य कभी भी पात होगा ही नहीं ।

यदि आपने कभी हस्तमैथुन नहीं किया, किसी भी तरह से जननेन्द्रिय का घर्षण करके वीर्यपात नहीं किया तो संतानोत्पत्ति की क्षमता वाला आपका जो वास्तविक वीर्य है, वह स्वाभाविक निकल ही नहीं सकता । यदि आपने गंदी क्रियाएँ करके पहले उसे मार्ग दे दिया है तो फिर उसके निकलने का मार्ग हो गया है । तो परमहंस जी ने बताया कि एक होता है आप सो रहे हैं और आपको बिल्कुल पता नहीं, बिल्कुल कोई काम का संकल्प नहीं, कोई क्रीड़ा नहीं और आप जगे आपको ऐसा लगा कि वीर्यपात हो गया तो वो दोष नहीं है । जैसे जब गुड़ बनाया जाता है तो उसमें गंदा फेन निकलता है ऊपर, ऐसे ही ये शरीर का बिकार निकला न कि ब्रह्मचर्य नष्ट करने वाला वीर्य । इसलिए उपासक को उसमें परेशान नहीं होना है क्योंकि आपके ब्रह्मचर्य का नाश नहीं हुआ; और यदि आप हस्तमैथुन या अन्य क्रियाओं के द्वारा वीर्यपात करते रहे हैं और आज आपने रोक दिया कि क्या आज से नहीं करूँगा तो वह तत्काल बंद नहीं हो जाएगा, वह वीर्य स्खलन कुछ समय तक चलेगा, अगर आप ठीक नियम से चलेंगे तो कम से कम छः महीने लगेंगे उसको कवर करने में और अगर आपने प्रमाद स्थिति की कि वहतो निकल ही जाता है, फिर हमको वीर्यपात करने से क्यों मना किया जाता है तो आप देख लेना कि कुछ समय बाद आपकी हालत बहुत गंभीर हो जाएगी, जो आप बता भी नहीं पायेंगे किसी से; क्या गंभीर हो जाएगी ? आप ऐसे ही साधारण सी क्रियाओं में ही ब्रह्मचर्य हीन हो जायेंगे । जननेन्द्रिय को छूते ही वीर्यपात होने लगेगा । ये सब बातें हम महापुरुषों के अनुभव और इस तरह की गंभीर हालत वाले लोगों से मिलकर ही बता रहे हैं ।

जो भी गृहस्थ या विरक्त साधक ब्रह्मचर्य धारण करना चाहता है तो उसे मन की शुद्धि पर बहुत ध्यान देना चाहिए। यदि मन अपवित्र है, कुसंस्कारों से युक्त है तो साधक ब्रह्मचारी रह ही नहीं सकता है। व्यायाम-प्राणायाम एवं सात्त्विक आहारादि ब्रह्मचर्य धारण करने में सहायक जरूर हैं लेकिन मुख्य बात है चिन्तन बदलना और उसके बदलने के लिए अत्यावश्यक है - नित्य सत्संग श्रवण, सत्शास्त्रों का स्वाध्याय एवं भगवन्नाम का सतत् जप।

परम पूज्य सद्गुरुदेव
श्री हित प्रेमानन्द गोविन्द शरण जी महाराज

प्रकाशक

श्रीहित राधा केलि कुंज ट्रस्ट
वाराहघाट, परिक्रमा मार्ग
वृन्दावन-281121, जिला-मथुरा (उ.प्र.)
Web : vrindavanrasmahima.com
Email : radhakelikunj@gmail.com